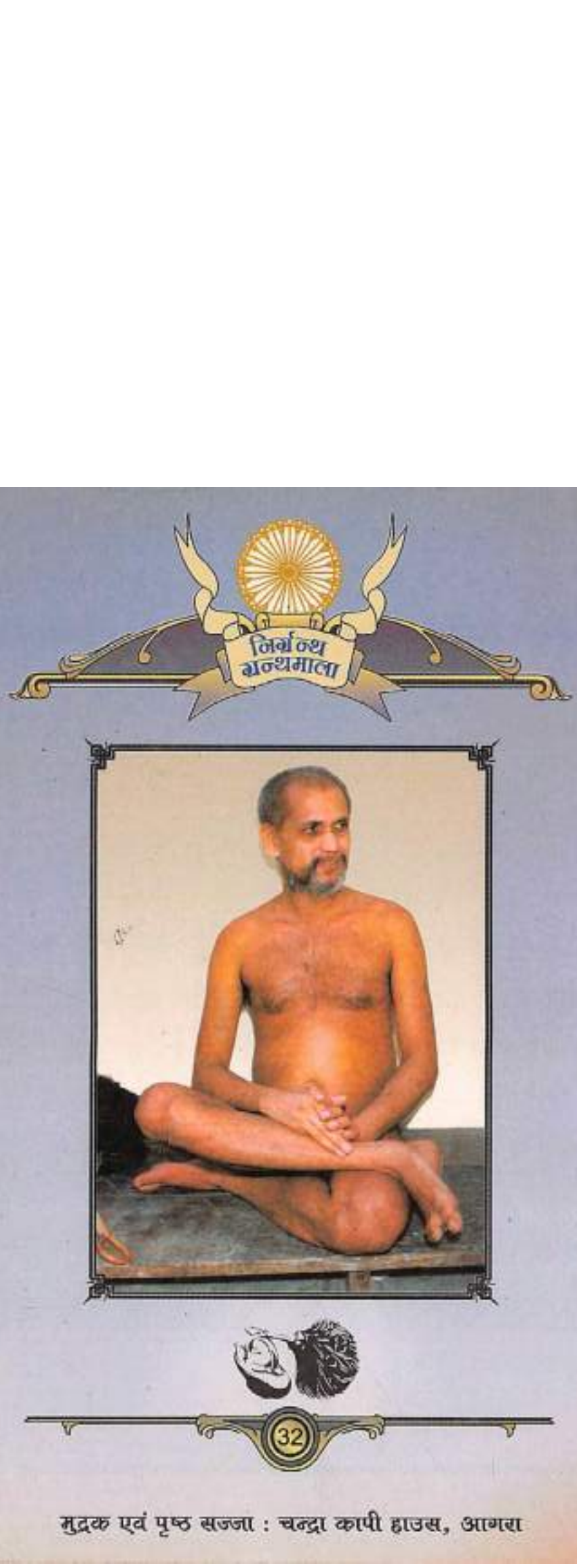

32

मुद्रक एवं पृष्ठ सज्जा : चन्द्रा कापी हाउस, आगरा

शान्तिनाथ पुराण-भाग-१ निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला 32

शान्तिनाथ पुराण

भाग-1

संपादक: उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

शान्तिनाथ पुराण

भाग-1

निर्ग्रंथ ग्रंथ माला समिति
टूण्डला चौराहा
खुलने का समय 10 से 1 बजे तक
मो0 9219997181

Book No. - 32

I.S.B.N. No. : 81-878280-69

SHRI SHANTINATH PURAN

PART-I

Written by

Kavivar Asag

Edited by

Upadhyaya Muni Nirnaya Sagar

Published by

Nirgranth Granthmala

भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी जी की 2600 वीं जन्म जयन्ती
के पुनीत अवसर पर निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला की नवीन प्रस्तुति

कविवर असग जी विरचित

शान्तिनाथ पुराण

भाग-1

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

संस्करण : प्रथम - सन् 2002
I.S.B.N. No. : 81-878280-69

शान्तिनाथ पुराण-1
कविवर असग जी विरचित

पावन आशीष : राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी महाराज

सम्पादक : उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

सहयोगी :
ऐलक श्री 105 विमुक्त सागर जी
क्षुल्लक श्री 105 विशंक सागर जी

प्रकाशक :
निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

मुद्रक :
अनिल कुमार जैन
चन्द्रा कॉपी हाउस,
होस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.)
✆ 360195, 260938

© सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन

मूल्य : स्वाध्याय (लागत मूल्य 20/-)

शास्त्र प्राप्ति स्थान :

- 1. चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ0प्र0)
- 2. श्री दि0 जैन लाल मंदिर, चाँदनी चौक, नई दिल्ली
- 3. अ0 भा0 सम्यग्ज्ञान शिक्षण समिति शाखा हटा, दमोह (म0प्र0)
- 4. धर्म जागृति संगठन व महावीर संगठन, फिरोजाबाद (उ0प्र0)
- 5. वास्ट जैन फाउन्डेशन, 59/2 बिरहाना रोड, कानपुर (उ0प्र0)

सत्यमेव जयते

विशेष कार्य अधिकारी
OFFICER ON SPECIAL DUTY

राष्ट्रपति सचिवालय,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली-110004,

President's Secretariat,
Rashtrapati Bhavan,
New Delhi-110004.

सं : 8 एम.एच/2001

दिनांक : 08 जनवरी, 2002

प्रिय श्री जैन जी,

भारत के राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन् जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि भगवान महावीर स्वामी की 2600वीं जयंती के अवसर पर पूर्व दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत व उपाध्याय श्री निर्णय सागर जी महाराज द्वारा सम्पादित एवं रचित 26 धार्मिक ग्रंथों का प्रकाशन आरम्भ किया जा रहा है।

राष्ट्रपति जी इन प्रकाशनों की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करते हैं।

सादर,

आपका,

(प्रेम प्रकाश कौशिक)

श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन,
मंत्री,
श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर,
एन-10, ग्रीन पार्क एक्स.,
नई दिल्ली-110016

उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर द्वारा रचित एवं सम्पादित ग्रंथावली

सुकुमाल चरित्र
चारुदत्त चरित्र
गौतम स्वामी चरित्र
महीपाल चरित्र
जैन व्रत कथा संग्रह
धन्य कुमार चरित्र
सुलोचना चरित्र
सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
जिन दत्त चरित्र
कुरल-काव्य
पुराण सार संग्रह - 1
पुराण सार संग्रह - 2
चेलना चरित्र
रयणसार
आहार दान
जिन श्रमण भारती
धर्म संस्कार भाग-1
सदार्चन सुमन
तनाव से मुक्ति
धम्म रसायणं
अराधना कथाकोश-1,2,3
तत्वार्थ सार
योगामृत
सार समुच्चय

महापुराण-1
महापुराण-2
चित्रसेन पद्मावती चरित्र
श्री राम चरित्र
अमरसेण चरिउ
नागकुमार चरित्र
सर्वोदयी नैतिक धर्म
पुण्यास्रव कथाकोष भाग-1
पुण्यास्रव कथाकोष भाग-2
करकंड चरित्र

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

यदि यह शास्त्र आपको अच्छा लगे तो आप सभी को पढायें। उत्सव, व्रत, त्यौहार, जन्म दिवस, पुण्य स्मृति के उपलक्ष्य में बाँटने एवं छापने योग्य समझें तो लागत मूल्य पर छपवाइये। ट्रस्ट -न्यास- फाउंडेशन आदि द्वारा छपवाना चाहते हो तो उनके नाम, चित्र, परिचय सहित छपवा सकते हैं।

प्रकाशक

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्तहै, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्तहोता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं–

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं ॥17 ॥द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्तिप्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अतः जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं –

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा ॥ (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति रत्नत्रय में अनुरक्तिकी भावना जागृत होती हैं। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोग मर्याख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥ र. श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय – सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि– निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना हैं ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्तिनहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते ही हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्तउन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अतः यथाशक्तिनित्य विनय पूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही हैं। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

''अलमति विस्तरेण''

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः
जिन चरण चञ्चरीक
टूंडला (3.12.2000)

ooo

तीर्थंकर भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी जी का

जीवन परिचय

नाम	:	श्री महावीर स्वामी
माता का नाम	:	प्रियंकारिणी/त्रिशला
पिता का नाम	:	श्री सिद्धार्थ
चिन्ह	:	सिंह
आयु	:	72 वर्ष
अवगाहना	:	7 हाथ
गर्भ तिथि	:	आषाढ़ शु. 6
जन्म तिथि	:	चैत्र शु. 13
दीक्षा तिथि	:	मार्ग कृष्ण 10
केवलज्ञान तिथि	:	वै. शु. 10
निर्वाण तिथि	:	कार्तिक कृ. 15
यक्ष	:	गुह्यक
यक्षिणी	:	सिद्धायिनी
वैराग्य का कारण	:	जातिस्मरण
दीक्षा वन	:	नाथ
दीक्षा वृक्ष	:	साल
सहदीक्षित	:	एकाकी
छदमस्थ काल	:	12 वर्ष
कुल गणधर	:	11
मुख्य गणधर	:	इन्द्रभूति
मुख्य श्रोता	:	श्रेणिक
मुख्य आर्यिका	:	चन्दना
प्रथम आहार दाता	:	चन्दना
सर्व ऋषि	:	14000
सर्व आर्यिका	:	36000/35000
श्रावक	:	1,00,000
श्राविका	:	3,00,000
केवली काल	:	30 वर्ष
तीर्थकाल	:	21042 वर्ष
वंश	:	नाथ
देवगति से पूर्व भव का नाम	:	नन्द/सुनन्द/नन्दन

भगवान महावीर स्वामी और उनके सिद्धान्त

भगवान महावीर स्वामी जैन धर्म के चौबीसवें/अंतिम तीर्थंकर थे, किंतु जैन ऐतह्यसिक परम्परानुसार वे जैन धर्म के न तो आदि प्रवर्तक थे और न ही सदा के लिए अंतिम तीर्थंकर। जैन धर्म की स्थापना किसी व्यक्ति विशेष के माध्यम से नहीं हुई क्योंकि यह जैन धर्म 'वस्तु के स्वभाव को ही धर्म कहता है'। संसार में विद्यमान समस्त पदार्थ अनादि निधन हैं यह सृष्टि भी अनादि-निधन है अतः पदार्थों का कभी अभाव नहीं होता। यथा जल का स्वभाव शीतलता व अग्नि का स्वभाव उष्णता है। ये स्वभाव अनादि-निधन हैं। इन्द्रिय व कर्म विजेता जिनधर्म प्रवर्तक जिनेन्द्र भगवान व तीर्थंकर अनादि काल से होते आ रहे हैं और अनंत काल तक होते रहेंगे। तीर्थंकर महापुरुषों द्वारा उपदिष्ट धर्म में अपने अपने युग के अनुसार विशेषताएँ भी रहती हैं और उनके मौलिक स्वरूप में तालमेल भी बना रहता है।

वर्तमान युग में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए, जिनका वर्णन न केवल जैन पुराणों में अनिवार्यतः आता है, अपितु भारत के प्राचीन ग्रंथों ऋग्वेद आदि में भी बाहुल्यतः मिलता है। यथा-ऋग्वेद के 10 वें पर्व की 102 व 10 वीं ऋचा में, इसी पर्व की 136, 166, 233 ऋचाओं में; इसके अतिरिक्त भाग 0 पुराण 5, 6 में व विष्णु पुराण के 3, 18 में भी वृषभनाथ के केशी, वातरसना, ऋषभनाथ आदि नाम ध्यान देने योग्य हैं।

उन वृषभदेव से लेकर महावीर भगवान पर्यंत 24 तीर्थंकरों के चरित्र का विधिवत् वर्णन जैन पुराणों में है।

धार्मिक, सैद्धान्तिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, आगमिक दृष्टियों से उनमें एक रूपता तथा एक आत्मा की व्याप्ति प्रकट करने के लिए महावीर स्वामी के पूर्व जन्म की परम्परा भगवान वृषभदेव से जुड़ी हुई है।

पुरुरवा भील से मारीचि तक

पुरुरवा भील जिसने जंगल में शिकार करते समय 'सागरसेन' मुनिराज के दर्शन करने मात्र से कौए के मांस का त्याग किया था। इस नियम का उसने विषम परिस्थितियों में भी पालन किया। वही पुरुरवा भील मृत्यु के उपरांत सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। वहां से प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती (जिसके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा) का पुत्र मारीचि कुमार हुआ। 'भरत चक्रवर्ती के नाम से इस देश का नाम भारत पड़ा' यह कथन वैदिक पुराणों में भी एक मत से स्वीकार किया गया है यथा-

भागवत पुराण	5, 4, 9, 11, 2
विष्णु पुराण	2, 1, 31,
वायु पुराण	33,52
अग्नि पुराण	107,11,12
ब्रह्माण्ड पुराण	14,5,62

लिंग पुराण	1,47,23
स्कन्द कुमार खण्ड	37,57
मार्कण्डय पुराण	50, 41

इत्यादि पुराणों आदि में उपरोक्त कथन का स्पष्टतः उल्लेख है।

मारीचि से सिंह पर्याय तक

मारीचि ने वृषभदेव के चरणों में जिनदीक्षा अंगीकार कर ली, किंतु वह आदि तीर्थंकर द्वारा निर्दिष्ट कठोर मुनिव्रतों का पालन नहीं कर सका अतः वह मुनि पद से भ्रष्ट हो गया मात्र अल्प काल ही मुनि रहा। इस पद से भ्रष्ट होने के बावजूद भी उसमें धर्म का बीजारोपण तो हो ही चुका था अतएव वह परिव्राजक साधु बन गया। भगवान वृषभदेव से अपने बारे में 'यह तीर्थंकर होगा' यह सुनकर अहंकार से जिनमत को छोड़कर 363 मिथ्यामतों की स्थापना करने वाला हुआ। दुर्धर कुतप करने से एवं अज्ञानतापूर्वक चारित्र का परिपालन करने से वह देव हुआ। पुनः अनेक बार देव, मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी पर्याय में मारीचि ने भ्रमण किया। असंख्यात् भवों को धारण कर कुछ कम एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम काल तक उसने परिभ्रमण किया।

अन्यत्र यह लिखा है कि सौधर्म स्वर्ग से आकर अग्निसह ब्राह्मण हुआ। पुनः स्वर्ग गया। वहां से च्युत होकर अग्निमित्र परिव्राजक बना। पश्चात् माहेन्द्र स्वर्ग गया वहां से च्युत हो भारद्वाज ब्राह्मण हुआ। पुनः परिव्राजक बन कर माहेन्द्र स्वर्ग गया वहां से निकलकर उसने तिर्यञ्च गति में व अधोगति में परिभ्रमण किया पुनः मारीचि का जीव सागरोपम काल के लिये इतर निगोद गया इसके अनन्तर उसने इन भवों को धारण किया-

1000 (एक हजार)	आक के वृक्ष के भव
80,000 (अस्सी हजार)	सीप के भव
20,000 (बीस हजार)	नीम के भव
90,000 (नब्बे हजार)	केलि के भव
3,000 (तीन हजार)	चन्दन के भव
5,00,00,000 (पांच करोड़)	कनेर के भव
60,000 (साठ हजार)	वैश्या के भव
5,00,00,000 (पांच करोड़)	शिकारी के भव
20,00,00,000 (बीस करोड़)	हाथी के भव
60,00,00,000 (साठ करोड़)	गधा के भव
30,00,00,000 (तीस करोड़)	श्वान के भव
20,00,00,000 (बीस करोड़)	नारी के भव
8,00,00,000 (आठ करोड़)	घोड़ा के भव
20,00,00,000 (बीस करोड़)	बिल्ली के भव

80,00,000 (अस्सी लाख)	देव पद के भव
60,00,000 (साठ लाख)	नपुंसक के भव
90,00,000 (नब्बे लाख)	धोबी के भव
60,00,000 (साठ लाख)	अकाल मरण, गर्भपात के भव
50,000 (पचास हजार)	राजा के भव

अनेक भव सुपात्र को दान देने से भोगभूमि के व कुपात्र को दान देने से कुभोग भूमि के प्राप्त किये।

तदनन्तर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड के मगध देश के राजगृह नगर में वेद पारंगत शांडिल्य ब्राह्मण की पाराशरी ब्राह्मणी से 'स्थावर' नामक पुत्र हुआ। पुनः वेद पारंगत होकर परिव्राजक बन माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु का धारक देव हुआ। वहां से चयकर इसी राजगृह नगर में विश्वभूति नामक राजा की जैनी नामक रानी से विश्वनंदी नामक पुत्र हुआ। इसी विश्वभूति राजा का भाई विशाखभूति था। एक दिन अपने विश्वभूति राजा विरक्त हो अपने छोटे भाई को राज्य पद व अपने पुत्र को युवराज पद देकर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर कठिन तप करने लगा।

किसी दिन विश्वनंदी युवराज के मनोहर नामक बगीचे को देखकर चाचा के पुत्र विशाखनंदी ने अपने पिता से उसकी याचना की। विशाखभूति राजा ने भी मायाचारी से विश्वनंदी को शत्रुओं पर आक्रमण के लिए भेजकर वह उद्यान अपने पुत्र के लिए दे दिया। विश्वनंदी को इस बात का पता लगाते ही उसने वापिस आकर विशाखनन्दी को पराजित कर दिया और उसको भयभीत देख विरक्त होकर उसको उद्यान सौंप कर आप स्वयं दैगम्बरी दीक्षा लेकर तप करने लगा।

घोर तपश्चरण करते हुए अत्यन्त कृश शरीरधारी विश्वनंदी मुनिराज एक दिन मथुरा नगरी में आहार के लिए आये। व्यसनों से भ्रष्ट यह विशाखनन्दी उस समय किसी राजा का दूत बनकर वहां आया हुआ था और एक वेश्या के भवन की छत पर बैठा मुनि को देख रहा था। दैवयोग से वहां एक गाय ने मुनिराज को धक्का देकर गिरा दिया। उन्हें गिरता देख क्रोधित हुआ विशाखनंदी बोला कि 'तुम्हारा पराक्रम हमें मारने को पत्थर का खम्भा तोड़ते समय देखा गया था वह आज कहां गया? इस प्रकार खोटे वाक्यों को सुनकर मुनिराज के मन में भी क्रोध आ गया और बोले कि इस हंसी का फल तुझे अवश्य मिलेगा। और अंत में निदान सहित सन्यास से मरण कर मुनिराज महाशुक्र स्वर्ग में देव हुए और विशाखभूति राजा (चाचा) का जीव भी वहां पर तप पूर्वक मरण करके देव हुआ। चिरकाल तक सुख भोगकर वे दोनों वहां से च्युत होकर सुरम्य देश के पौदनपुर नगर में प्रजापति महाराज की जयावती रानी से विशाखभूति का जीव 'विजय' नामक बलभद्र पदवी धारक पुत्र हुआ और उन्हीं की दूसरी मृगावती रानी से विश्वनंदी का जीव नारायण पद धारक त्रिपृष्ठ नामक पुत्र हुआ एवं विशाखंनदी का जीव चिरकाल तक संसार में परिभ्रमण कर विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के अलकापुर नगर में मयूरग्रीव विद्याधर की नीलाञ्जना रानी

से अश्वग्रीव का नाम प्रतिनारायण पद का धारक पुत्र हुआ। पूर्व जन्म के संस्कार से त्रिपृष्ठ नारायण ने अश्वग्रीव प्रतिनारायण को मारकर चक्र रत्न प्राप्त किया। चिरकाल तक राज्य सुख को भोगकर अंत में भोगासक्ति से मरकर सातवें नरक को प्राप्त किया। वहां के दुखों को सागरों पर्यंत सहकर उसी भरत क्षेत्र की गंगा नदी के तट के समीपवर्ती वन में सिंहगिरि पर्वत पर सिंह हुआ, वहां भी तीव्र पाप से पुनः प्रथम नरक को प्राप्त किया। वहां एक सागर तक दुख भोग कर जम्बूद्वीप में सिंहकूट की पूर्व दिशा में हिमवन पर्वत के शिखर पर सिंह हो गया।

सिंह का उत्थान

किसी समय यह सिंह किसी हरिण को पकड़ कर खा रहा था। उसी समय अतिशय दयालु 'अजितंजय' नामक चारण मुनि अमितगुण नामक चारणमुनि के साथ आकाश में जा रहे थे। उन्होंने उस सिंह को देखा, देखते ही वे तीर्थंकर के वचनों का स्मरण कर दयावश आकाशमार्ग से उतरकर उस सिंह के पास पहुंचे और शिलातल पर बैठकर उच्च स्वर से सम्बोधन कर धर्ममय वचन कहने लगे। उन्होंने कहा कि हे मृगराज! तूने पहले त्रिपृष्ठ नारायण के भव में इन्द्रियों में आसक्त होकर मरकर नरक पर्याय प्राप्त की। वहां के दुख भोगकर वहां से निकलकर सिंह पर्याय पाकर क्रूरकर्मी होकर पुनः नरक गया अब वहां से निकलकर पुनरपि सिंह पर्याय को प्राप्त हुआ है। अरे मृगराज !

अब इस भव से तू दशवें भव में अन्तिम तीर्थंकर होगा। यह सब मैंने श्रीधर तीर्थंकर के मुख से सुना है। हे बुद्धिमान! अब तू आज से संसार रूपी अटवी में गिराने वाले मिथ्यामार्ग से विरत हो और आत्मा का हित करने वाले मार्ग में रमण कर।

इस प्रकार उस सिंह ने मुनिराज के वचन हृदय में धारण किये तथा उन दोनों मुनिराजों की भक्ति के भार से नम्र होकर बार-बार प्रदक्षिणाएं दीं बार-बार प्रणाम किया। शुभ निमित्त के मिल जाने से शीघ्र ही तत्व श्रद्धान धारण किया और मन स्थिर कर श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये।

इस प्रकार संयमासंयम के व्रतों का पालन करते हुए सिंह अन्त में सन्यास धारण करके एकाग्रचित्त से मरा अंत में सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नामक देव हुआ। वहां दो सागर तक सुखों को भोग कर वहां से च्युत होकर धातकीखंड के पूर्व विदेह की मंगलावती देश के विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के कनकमाला नगर के राजा कनकपुंख विद्याधर और कनकमाला रानी के गर्भ से कनकोज्ज्वल नामक पुत्र हुआ। किसी समय मंदर पर्वत पर 'प्रियमित्र' मुनिराज से दीक्षा लेकर अंत में समाधि से मरणकर सातवे स्वर्ग में देव हुआ। वहां से च्युत होकर इसी अयोध्या नगरी के राजा वज्रसेन की शीलवती रानी से हरिषेण नामका पुत्र हुआ। पुनः राज्य भार को छोड़कर श्रुतसागर मुनि से दीक्षा लेकर आयु के अंत में महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ। वहां से च्युत होकर धातकीखंड के पूर्व विदेह की पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र और उनकी मनोरमा रानी से प्रियमित्र पुत्र हुआ। इस प्रियमित्र ने चक्रवर्ती के वैभव को प्राप्त किया था।

अनन्तर क्षेमंकर तीर्थंकर से दीक्षा लेकर आयु के अंत में सहस्रार स्वर्ग में देव सुख का अनुभव कर जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर में नन्दिवर्धन महाराजा की वीरवती महारानी से नन्द नामक पुत्र हुआ। यहां पर भी अभिलक्षित राज्य सुख को भोग कर प्रोष्ठिल नाम के गुरु के पास दीक्षा लेकर उग्र तपश्चरण करते हुए ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चितंवन कर तीर्थंकर नमकर्म का बंध किया। आयु के अंत में सब प्रकार की आराधनाओं को प्राप्त कर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में श्रेष्ठ इन्द्र हुआ।

जब इस इन्द्र की आयु 6 महीने शेष थी तब इस भरत क्षेत्र के विदेह नामक देश सम्बन्धी कुण्डलपुर नगर के राजा सिद्धार्थ के भवन के आंगन में इन्द्र की आज्ञा से कुबेर के द्वारा की गयी प्रतिदिन साढ़े दश करोड़ या चौदह करोड़ रत्नों की मोटी धारा बरसने लगी।

श्री शुभमिती आषाढ़ शुक्ला षष्ठी, शुक्रवार 17 जून ईसवी सन् से 599 वर्ष पूर्व की रात्रि के पिछले प्रहर में सिद्धार्थ महाराज की रानी प्रियकारिणी ने सोलह स्वप्न देखे एवं प्रभात में अपने पतिदेव से उन स्वप्नों का फल सुनकर सन्तोष प्राप्त किया। अनन्तर देवों ने आकर भगवान का गर्भ कल्याणक उत्सव मनाते हुए माता-पिता की विधिवत् पूजा की। अर्थात् माता त्रिशला के गर्भ में अच्युतेन्द्र का जीव आ गया।

जन्म कल्याणक

नव मास व्यतीत होने पर चैत्र सुदी 13 सोमवार 27 मार्च ईसवी सन् से 598 वर्ष पूर्व माँ त्रिशला ने तीर्थंकर बालक को जन्म दिया। उनके जन्म से तीनों लोको में क्षण भर के लिए शांति की लहर छा गई। उनके जन्म से सर्वत्र सुख शांति, धर्म, लक्ष्मी, यश आदि की वृद्धि हुई थी। इसलिये उनका नाम वर्धमान रखा गया। सौधर्म इन्द्र ने मेरु पर्वत की पांडुक शिला पर असंख्यात देव समूह के साथ उन भगवान बालक का अभिषेक किया।

संजयंत व विजयंत नामक मुनिराजों का संशय उनको देखने मात्र से दूर हो गयाथा। अत: उन्होंने उनको 'सन्मति' कहकर सम्बोधित किया। बाल्यावस्था में ही संगम देव द्वारा ली गई परीक्षा में वे सफल हुए। संगम देव इनकी शक्ति व निर्भयता देखकर दंग रह गया, उसने नम्रीभूत होकर उनकी 'महावीर' नाम से स्तुति की।

भगवान महावीर पांचवे बालयति तीर्थंकर थे। इनके पूर्व वासुपूज्य भगवान, मल्लिनाथ भगवान, नेमिनाथ भगवान, पार्श्वनाथ भी बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर थे। इन्होंने स्वेच्छा से शादी नहीं रचायी। सकल विषय वासनाओं को जीतकर तीस वर्ष की वय में इन्होंने मंगसिर वदी 10 सोमवार 20 दिसम्बर सन् ईसवी सन् से 569 वर्ष पूर्व में दिगम्बर जिन दीक्षा ग्रहण की।

बारस वर्ष की कठोरतम मौन व्रत एवं संयम साधना व आत्म ध्यान के फल स्वरूप जृम्भिका ग्राम के समीप, ऋजुकूला नदी के किनारे मनोहर नामक वन में भगवान महावीर स्वामी को वैशाख सुदी 10 रविवार 26 अप्रैल ईसवी सन् से 537 वर्ष पूर्व को चार घातिया कर्मों को

क्षय कर केवलज्ञान को प्राप्त किया। योग्य श्रोता/ गणधर के अभाव में भगवान की दिव्यध्वनि 66 दिन तक नहीं खिरी। अर्थात् धर्मोपदेश नहीं हुआ। महावीर स्वामी का प्रथम धर्मोपदेश श्रावण कृष्णा 1, वीर शासन जयंती 1-1-1 को अथवा ईसवी सन् से 557 वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ था।

30 वर्ष तक भगवान महावीर स्वामी ने केवली अवस्था में अनेकों देशों में विहार कर धर्म का उपदेश भव्य जीवों को दिया। उनके समवशरण में असंख्यात देव देवियां, लाखों मनुष्यों/श्रावकों व लाखों श्राविकाएं, हजारों दिगम्बर मुनि व हजारों साध्वीयां/आर्यिका माताएं थीं। प्राणी मात्र को कल्याण का उपदेश देने वाले भगवान महावीर स्वामी ने लगभग 72 वर्ष की उम्र में शेष चार अघातिया कर्मों को भी क्षय करके कार्तिक वदी 14 की रात्रि के अंतिम पहर या कार्तिक वदी अमावस्या के प्रातः काल मंगलवार 15 अक्टूबर ईसवी सन् से 527 वर्ष पूर्व को मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित/प्रचारित सिद्धान्तों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम ज्ञेय सिद्धान्त, द्वितीय आचरणीय सिद्धान्त।

I. ज्ञेय सिद्धान्त

अर्थात् जानने योग्य सिद्धान्त। वस्तु तत्व को यथार्थ रूप से समझने के लिए जिनमत के रहस्य मयी सूत्रों को आत्मसात करने के लिए, आत्मा को परमात्मा बनाने की कला सीखने के लिए, विश्व के प्रत्येक प्राणी की मनोभावना व वाच्य सिद्धांतो को समझने के लिए भगवान महावीर स्वामी के ज्ञेय सिद्धान्तों को जानना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। उन ज्ञेय सिद्धान्तों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है-प्रथम अनेकान्तात्मक सिद्धान्त या अनेकान्तवाद, द्वितीय स्याद्वाद।

1. अनेकान्तवाद

प्रत्येक द्रव्य में अनन्त धर्म विद्यमान हैं या प्रत्येक द्रव्य में अनेक गुण, स्वभाव या लक्षण पाये जाते हैं। अनेकान्त का शब्दिक अर्थ है-अनेक है अंत जिसके, अर्थात् जिसमें अनन्त धर्म हैं। अनेकान्तात्मक दृष्टि से वस्तु तत्व को जानने वाला वाद ही अनेकान्त वाद है। यथा-राम एक होते हुए भी अनन्त धर्मा हैं, उनमें पितृत्व, पुत्रत्व, भ्रातृत्व, पतित्व, पौत्रत्व, प्रपौत्रत्व, पितामहत्व, प्रपितामहत्व, मानवता, जीवन्त, भव्यत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व, अनेकत्व, भेदत्व, अभेदत्व इत्यादि धर्म हैं। इन परस्पर विरोधी सर्व धर्मों को बिना विरोध के जो ग्रहण करता है वही अनेकान्त वाद है।

2. स्याद्वाद

श्री महावीर प्रभु का वस्तु तत्व को जानने वाला दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है-स्याद्वाद। यह शब्द दो शब्दों के मेल से बना है-पहला शब्द है-स्याद व दूसरा शब्द है-वाद। इनमें 'स्याद' का

अर्थ कथञ्चित् है तथा 'वाद' शब्द का अर्थ कथन, वचन, वक्तव्य है। स्याद्वाद का अर्थ हुआ कि कथञ्चित् किसी बात को स्वीकार करना। द्रव्य में विद्यमान अनंत धर्मों का कथन एक साथ संभव नहीं है तथा वे धर्म परस्पर विरोधी भी हो सकते हैं। इन विरोधी धर्मों को भी जो कथंचित् (किसी अपेक्षा से यह भी सत्य है) सत्य कहता है वही है स्याद्वाद। स्याद्वाद समस्त विवादों को निबटाने व वस्तु तत्व का यथार्थ बोध कराने वाला अनुपम हेतु है।

II. भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित आचरणीय सिद्धान्त-

आचरण ही किसी धर्म की अंतर्चेतना हो सकती है, बिना आचरण के धर्म मुर्दा शरीर के बराबर है मुख्य रूप से भगवान महावीर स्वामी द्वारा उद्घोषित पांच सिद्धान्त सूत्र हैं। इनमें भी आत्म कल्याण व शांति का रहस्य छिपा हुआ है।

1. अंहिसा व्रत

मन, वचन, काय से किसी जीव को कष्ट नहीं पहुंचाना, न कष्ट देने हेतु किसी को प्रेरित करना, किसी हिंसा करने वाले की अनुमोदना न करना अहिंसा का स्थूल स्वरूप है। यथार्थता में तो किसी जीव के प्रति हिंसा के परिणाम भी न होना अथवा किसी भी पर पदार्थ के प्रति हिंसा के परिणाम भी न होना अथवा किसी पदार्थ के प्रति राग द्वेष का नहीं होना, अपनी आत्मा में लीन रहना ही परम अहिंसा है। इस अंहिसा की ही पूर्णता के लिए शेष चार सिद्धान्त रक्षा कवच की तरह हैं। यह अंहिसा ही जगज्जननी है, प्राणी मात्र का प्राणों से प्रिय धर्म है, यह आत्म-स्वभाव है, लक्षण है, धर्म है ,नियति है, चरम साध्य लक्ष्य है।

2. सत्य व्रत

मन, वचन, काय से सम्पूर्ण असत्य का त्याग करना, न वचन से असत्य बोलना, न शरीर से असद् चेष्टा करना और न ही मन में असद् विचार करना। असत्य के लिए प्रेरित करना तथा असत्यवादी असत्यार्थी असत्यासक्त की प्रशंसा नहीं करना, उसकी क्रिया की अनुमोदना नहीं करना, उसकी चेष्टाओं से सहमत नहीं होना ही सत्य व्रत है। पर भावों का सर्वथा त्याग कर निजात्मा में लीनता ही निश्चय से सत्य व्रत है।

3. अचौर्य व्रत

किसी की भूली हुई, पड़ी हुई, गिरी हुई, वस्तु को उस स्वामी की अनुमति के बिना ग्रहण करना या ग्रहण करने का भाव करना भी चोरी है, यह चोरी का स्थूल लक्षण है। सूक्ष्म रूप से; दूसरे के विचार, आशय, ज्ञान, यश, सुख, शांति छीनता भी चोरी है। जिस वस्तु का अधिकारी किसी और को होना चाहिए यदि आप उसके अधिकारी अवैध रूप से बन गये है तो वह भी चोरी है। निश्चयापेक्षा से तो पर पदार्थों का ग्रहण, आत्मा लीनता का अभाव चोरी है। स्वात्म लीनता ही निश्चय से अचौर्य व्रत है।

4. ब्रह्मचर्य व्रत

अपनी ब्रह्म स्वरूप आत्मा में लीन होना, किसी भी स्त्री के साथ काम सेवन, या इन्द्रिय विषय में प्रवृत्ति नहीं करना ही ब्रह्मचर्य व्रत है। यह व्यवहार ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। स्त्री मात्र के साथ मैथुन का मन, वचन, काय से त्याग करना ब्रह्मचर्य व्रत है।

5. अपरिग्रह व्रत

चेतन व अचेतन के भेद से परिग्रह के दो भेद हैं। इसके भी अंतरंग व बहिरंग के भेद से दो भेद हैं। उनके क्रमशः 14 व 10 भेद है। समस्त परिग्रह का मन वचन, काय से त्याग करना अपरिग्रह व्रत है। मन, वचन, काय से, कृत कारित अनुमोदना से समस्त वाह्य पदार्थों का त्याग करना, अपनी आत्मा में ही लीन हो जाना निश्चय से अपरिग्रह व्रत है। व्यवहार अपेक्षा से सकल वाह्य परिग्रह का, यथा शक्य अंतरंग परिग्रह का त्याग करना अपरिग्रह व्रत है।

इन पांचों व्रतों का पालन श्रावक एक देश करता है क्योंकि वह गृहस्थ है, उसके व्रत देश व्रत या अणुव्रत कहे जाते हैं तथा साधक को इन व्रतों का सकल देश या सम्पूर्णतया पालन करना चाहिए इन व्रतों के बिना आत्म-कल्याण असंभव ही है। इन पांच व्रतों का पालन करने से हजारों नियमों व संविधान के पालन की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं में सभी नियम, कानून, विधान व संविधान का पालन हो जाता है।

★★★★★

पूर्व कथ्य.....

—उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

प्रस्तुत ग्रन्थ "शान्तिनाथ पुराण" वर्तमान चौबीसी के सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ स्वामी जी का पवित्र जीवन चरित्र है। भगवान शान्तिनाथ स्वामी ही वर्तमान कालीन चौबीसी में ऐसे तीर्थंकर हैं जिन्होंने सुदीर्घ काल तक पुण्य फलस्वरूप महापदों के वैभव को पूर्व के दशभवों में निरन्तर भोगा है। पूर्व में दो बार तीर्थंकर के पुत्र हुए, एक बार चक्रवर्ती व बलभद्र बने, इन्द्र, प्रतीन्द्र, व अहमिन्द्र पद के वैभव को अनेक बार भोगा। वर्तमान भव या चरम भव में भी तीर्थंकर, कामदेव व चक्रवर्ती के ऐश्वर्य, वैभव एवं अभ्युदय को युगपत् भोगा। भगवान शान्तिनाथ स्वामी के पूर्व सात तीर्थंकरों के काल में कुछ समय के लिये धर्म की विच्छित्ति/लोप रहा किन्तु शान्तिनाथ भगवान के समय से लेकर अभी तक धर्म अखण्ड धारा शान्तिधारा के रूप में प्रवर्तमान हैं। यूं तो भगवान शान्तिनाथ स्वामी के जीवन चरित्र के प्रतिपादक अनेक विद्वान, मनीषियों द्वारा विरचित कई ग्रन्थ हैं, जो कि पूर्वाचार्यों के अनुसार ही रचित हैं। नेकानेक दिगम्बर जैनाचार्यों ने भी भगवान शान्तिनाथ स्वामी के परम पावन चरित्र को शब्दों में लिपिबद्ध किया था। किन्तु वर्तमान समय में परम पूज्य आचार्य भगवन् सकल कीर्ति महाराज व आचार्य भगवन् गुणभद्र स्वामी द्वारा विरचित साहित्य ही उपलब्ध हैं। मनीषी विद्वानों में सिद्धान्त पारगामी व्याकरण संस्कृत के प्रकाण्डज्ञाता कवि सम्राट श्री असग जी द्वारा विरचित् शान्तिनाथ पुराण भी पूर्वाचार्यों के अनुसार होने से प्रमाणिक एवं सर्व ग्राह्य/उपादेय शास्त्र है। कवि असग जी एक भवभीरु, संवेगी, आत्म-संतोषी एवं वैराग्योन्मुख सुधी श्रावक रहे। इनका जन्म चोल देश के विरला नगर में हुआ था, इनके पिता का नाम श्री पटुमति एवं माँ का नाम श्रीमती वैरेति था। आचार्य नागनंदी महाराज के ये शिष्य थे। इनके मित्र का नाम जिनाप था। श्रावक अवस्था में ही इन्होंने ग्रन्थों की रचना की बाद में ये मुनि बने या नहीं यह विषय अभी भी अनिर्णीत है। आठ ग्रन्थों की रचना का कार्य इन्होंने चोल देश में श्री नाथ राजा के राज्य में विरला नगरी में ई. 910 या वि. सं. 967 में किया। पल्लव नरेश-नन्दि पोतरस के चोल सामन्त श्री नाथ के आश्रय में आर्यनंदी के वैराग्य पर वर्धमान चरित्र की रचना की। इससे अधिक इनका परिचय हमें प्राप्त नहीं हो सका।

कविवर असग जी द्वारा विरचित 2 ग्रन्थ (वर्धमान चरित्र व शान्तिनाथ पुराण) वर्तमान में उपलब्ध हैं, शेष छह ग्रन्थ सम्भव हैं, मातृभाषा कन्नड़ होने से कन्नड़ भाषा में ही लिपिबद्ध हों, अथवा कर्नाटक के किसी भण्डार में दीमक व चूहों के लिये सुपाच्य खाद्य बन गये हों। हमारे प्रमाद से यह भी सम्भव है, भण्डारों में ही सड़ रहे या गल रहे हों या कृषि हेतु उत्तम खाद या मिट्टी का रूप

ले चुके हों, क्योंकि वर्तमान काल में भी सहस्त्रों ग्रन्थराज भारत के विभिन्न प्रान्तों में भाषा की विभिन्नता व रुढ़ि और परम्परा की भिन्नता से दक्षिण भारत के ग्रन्थ उत्तर भारत में स्थान पा लेने में असमर्थ भी हैं, वे उचित स्थान व उपयोगिता से विहीन उपेक्षा भाव से ग्रसित किसी रद्दी की टोकरी में या बोरों में भरे पड़े हैं। धर्म बुद्धि से विहीन, धर्मज्ञान से रिक्त किन्तु श्री सम्पन्न किसी मन्दिर के प्रधान/अध्यक्ष, मंत्री या व्यवस्थापकों के अहम् की पुष्टि करते हुए अपनी अंतिम श्वांस विसर्जित कर रहे हैं। आज भी नेक स्थानों पर कुछ हठाग्रही श्रावकों की बंद अलमारियों में नेक दशाब्दियों/दशकों से मृत छिपकली, झींगुर, मकड़ी, चूहे, गिलहरी काँतर व कीड़े-मकोड़ों के बीच अपनी किस्मत पर पंचम काल की बलिहारी अश्रुपात करते हुए करुण क्रन्दन कर रहे हैं। आज भी न केवल कन्नड़ साहित्य अपितु संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, ढूंढारी, मराठी, उर्दू आदि भाषाओं का भी सर्व ज्ञानोपयोगी जैन साहित्य धर्मावलंबियों के प्रमाद से दयनीय अवस्था को प्राप्त हो रहा है।

कन्नड़ आदि भाषा की सहस्त्रों सहस्र ताड़पत्रीय/देशी घास प्रत्रीय प्रतियाँ आज भी अनालोकित व अपठित दशा में विद्यमान हैं, उन शास्त्रों के नामों की एक विषय सूची ही लगभग 250-300 पृष्ठ की हमारे पास भी विद्यमान हैं। यह सब देखकर किसी कवि की महत्वपूर्ण पंक्ति बार-बार याद आ रही है-

जिनवाणी जिन देव से, रो-रो करे पुकार।
हमें छोड़ तुम शिव गये, करि कुपात्र अधिकार॥

वर्तमान काल में तीर्थों का जीर्णोद्धार मन्दिरों का जीर्णोद्धार आदि के कार्य तो बहुत जोर-शोर से चल रहे हैं, यदि कोई महानुभाव शास्त्रों के जीर्णोद्धार एवं धर्मात्माओं (श्रमणों व श्रावकों) के जीर्णोद्धार का कदम उठाये तो विश्व में सुख शान्ति की स्थापना की उम्मीद आज भी हो सकती है। यदि सत् साहित्य का नव निर्माण व पुरातन सत् साहित्य का संरक्षण व संवर्धन नहीं किया और श्रावकों व श्रमणों के चारित्र में लगी शिथिलता की जंग को दूर नहीं किया तथा प्रत्येक मानव मात्र को इस कर्त्तव्य के प्रति प्रेरित नहीं किया तो विश्व शान्ति की स्थापना करने की कल्पना तो की जा सकती है, किन्तु उन स्वप्नों को साकार रूप नहीं दिया जा सकता।

प्रस्तुत ग्रन्थ में शान्तिनाथ भगवान के राजा श्रीषेण से लेकर शान्तिनाथ की पर्याय तक के दस-बारह भवों का विस्तार से वर्णन है। श्रीषेण राजा आहार दान के प्रभाव से सिंहनंदिता, अनिन्दिता व सत्यभामा ब्राह्मण पुत्री सहित क्रमशः आर्य-आर्या बने। वहाँ से श्रीप्रभदेव तत्पश्चात् अमिततेज, पुनः अच्युतेन्द्र तत्पश्चात् वज्रायुध विद्याधरों का चक्रवर्ती, ग्रैवेयक में अहमिन्द्र वहाँ से चयकर

घनरथ तीर्थंकर के पुत्र मेघरथ द्वारा तीर्थंकर प्रकृति बाँध कर सर्वार्थसिद्धि गये वहाँ से च्युत होकर सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ बने।

इस शास्त्र में कविवर असग जी ने जैन सिद्धान्त के गूढ़तम रहस्यों का सूक्ष्म विश्लेषण, यथार्थ घटनाओं का वर्णन एवं संसार की दशाओं के दर्शायक सन्दर्भों का हृदयतल स्पर्शी व्याख्यान् किया है, इस शास्त्र में केवल प्रथमानुयोग ही नहीं है अपितु चरणानुयोग, करणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग भी अविनाभावी रूप से संलग्न है। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त न्याय, नीति, सदाचरण, व्याकरण व आध्यात्मिक तथ्यों का भी अभाव नहीं है। इस ग्रन्थ में कविवर महोदय ने अपनी मन गढ़न्त कल्पनाओं को नहीं लिखा बल्कि पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विषय का ही पुनरोत्थान किया है। दीमक व मूषकों की सुपाच्य खाद्य सामग्री बनता हुआ जीर्ण-शीर्ण पत्रों से युक्त यह ग्रन्थ दिल्ली के किसी जिनालय से अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त हुआ। प्राप्तकर इसके शुद्ध व सुन्दर प्रकाशन की आवश्यकता महसूस हुई सो न्यायोपार्जित साधर्मी सुधी श्रावकों ने ऐलक जी से इस कार्य के लिये निवेदन किया जिसका परिणाम आपके कर कमलों में विद्यमान है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोगी ऐलक श्री विमुक्त सागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री विशंक सागर जी महाराज, संघस्थ त्यागी व्रती सुधी श्रावक-श्राविकाओं को समाधिरस्तु आशीर्वाद प्रकाशक निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, मुद्रक-अनिल कुमार जैन, चन्द्रा कॉपी हाउस, आगरा एवं अपने समीचीन द्रव्य का सदुपयोग करने वाले सुधी श्रावक श्री अमेन्द्र जैन, राजगढ़ कॉलोनी, दिल्ली एवं प्रत्यक्ष व परोक्ष में रहे सभी सहयोगी जनों को जो ख्याति नाम की चाह से विरक्त हैं धर्म वृद्धि शुभाशीर्वाद।

इस ग्रन्थ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ/छद्मस्थ श्रमण द्वारा जो भी त्रुटि रह गई हों तो अभेद रत्नत्रयधारी सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए सुधार हेतु संकेत देने का अनुग्रह करें। तथा गुणग्राही सत् श्रद्धालु विनय व शिष्टाचार से मुक्त पाठकगण समीचीन अर्थ को ग्रहण करते हुए आत्म कल्याण की पुनीत भावना के साथ ग्रन्थराज का आद्योपांत स्वाध्याय कर अपने सम्यग्ज्ञान व धर्म ध्यान की वृद्धि करते हुए सम्यक्दर्शन व चारित्र को निर्मल व सुदृढ़ बनायें ऐसी आपके प्रति मेरी मंगल भावनाएँ हैं।

इन्हीं भावनाओं के साथ--

अलमति विस्तरेण

श्री शुभमिती
जेष्ठ सुदी 5 (श्रुत पंचमी)
रविवार वासरे
वी. नि. सं. 2528
वि.सं.-2059

संयमानुरक्तः पापभीरुः
कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः जिनचरण चंचरीक
16 जून 2002 रविवार
कुन्द कुन्द भारती
नई दिल्ली

विषय सूची

प्रथम सर्ग–

प्रभावती नगरी के राजास्तिमित सागर की विभूति का वर्णन। वसुन्धरा व वसुमति रानियों के अपराजित व अनन्तवीर्य में प्रीति। स्तिमित सागर का स्वयंप्रभ जिनेन्द्र के समवशरण में जिन दीक्षा ग्रहण करना एवं धरणेन्द्र पद का निदान करना। नारद जी के द्वारा दमितारि प्रतिनारायण को किरातिका व पर्वणिका का परिचय देना व प्रतिनारायण के द्वारा दूत भेजा जाना। दूत के द्वारा भेंट में देय घट से उनको जातिस्मरण होना।

द्वितीय सर्ग–

अनन्तवीर्य का विचार विमर्श कर नर्तकी का। वेष धारण कर स्वयं वहाँ पहुँच जाना। दूत के द्वारा दमितारि के पास कन्या की याचना का संदेश भेजना। दूत के लिये गायिका वेषधारी अपराजित व अनन्तवीर्य को सौंपा जाना।

तृतीय सर्ग–

दूत द्वारा विजयार्ध पर्वत शिव मन्दिर नगर का वर्णन। दूत के द्वारा गायिकाओं का प्रतिनारायण के सामने उपस्थित करना। अमितगति दूत के द्वारा दमितारि की आज्ञा से गायिकाओं का प्रतिनारायण की पुत्री कनकश्री को सौंपा जाना।

चतुर्थ सर्ग–

उन गायिका भेषधारी अपराजित व अनन्तवीर्य द्वारा कन्या का अपहरण। युद्ध की चुनौती देना, प्रतिवर्धन दूत का भेजा जाना, वापिस लौटने पर युद्ध की तैयारियाँ करना।

पंचम सर्ग–

अपराजित व महाबल का घमासान युद्ध महाबल की मृत्यु। अनन्तवीर्य व दमितारि के भयंकर युद्ध में दमितारि के चक्र रत्न से ही दमितारि की मृत्यु होना, अपराजित का बलभद्र के रूप में एवं अनन्तवीर्य को नारायण घोषित किया जाना।

षष्ठम सर्ग–

पितृ मरण सम्बन्धी शोक एवं लोकापवाद के दुःख से संतप्त कनक श्री को सांत्वना देना, दमितारि का दाह संस्कार करना, शेष विद्याधरों को अभय देना, विमान का भूतारमण अटवी के मध्य कांचनगिरि पर्वत के ऊपर रुक जाना, वहाँ मुनिराज को केवलज्ञान प्रकट होना कनकश्री के भवान्तरों का वर्णन, कनकश्री के भाई विद्युददंष्ट्र व सदंष्ट्र का बदला लेने आना युद्ध में अनन्तवीर्य द्वारा दोनों का मारा जाना, कनकश्री को पिता व भाई की मृत्यु से वैराग्य, चार हजार कन्याओं के साथ स्वयंप्रभ जिनेन्द्र के समवशरण में जिनदीक्षा ग्रहण करना, बलभद्र की पुत्री सुमति का स्वयंवर, पूर्वभव की बहिन देवी द्वारा संबोधन देना, वैराग्य को प्राप्त हो आर्यिका दीक्षा लेना, चौरासी लाख पूर्व तक राज्य भोगकर अनन्तवीर्य की मृत्यु हो जाना, अपराजित को वैराग्य होना, दीक्षा लेना समाधि मरण कर अच्युतेन्द्र होना।

सप्तम सर्ग–

अच्युतेन्द्र का नंदीश्वर द्वीप की वंदना कर सुमेरु पर्वत पर जाना। जिनालय में विद्याधर का मिलना, परस्पर प्रीति होना, पूर्व भव का वर्णन, रथनूपुर के राजा ज्वलजटी व रानी वायुवेगा से उत्पन्न पुत्री स्वयंप्रभा का विवाह त्रिपृष्ठ से करनां, अश्वग्रीव प्रतिनारायण का त्रिपृष्ठ बलभद्र से स्वयंप्रभा के निमित्त युद्ध करना, अश्वग्रीव का मरकर नरक जाना, त्रिपृष्ठ नारायण व विजय बलभद्र का विशद वर्णन, अमित तेज, श्री विजय व सुतारा के अपहरण की चर्चा।

अष्टम सर्ग–

अमित तेज व अशनिघोष का विजय केवली के पास जाना, स्वयंप्रभा को सुतारा को लाना, अमिततेज द्वारा सुतारा का अपहरण पूछना, राजा श्रीषेण रानी सिंहनंदिता व अनंदिता पुत्र इन्द्रसेन व उपेन्द्र सेन, ब्राह्मण पुत्री सत्यभामा का श्रीषेण की शरण में आना, अमित गति व आदित्य गति मुनिराजों को श्रीषेण द्वारा आहार दिया जाना, सत्यभामा का अनुमोदना करना, बंसत–सेना के निमित्त से इन्द्रसेन उपेन्द्रसेन में युद्ध, विद्याधर द्वारा इन्द्रसेन व उपेन्द्रसेन का पूर्व भव वर्णन यह तुम्हारी बहिन है। राजा, दोनों रानी व सत्यभामा का विषफूल सूंघकर मर जाना, चारों का भोग भूमि जाना, पुनः सौधर्म स्वर्ग जाना, श्रीषेण का अमित तेज एवं सिंहनंदा का स्वयंप्रभा होना अनिन्दिता का श्री विजय होना एवं सत्यभामा का सुतारा होना, कपिल ब्राह्मण का भवान्तर में

अशानिघोष होना अमिततेज व श्री विजय की दीक्षा समाधिमरणोपरान्त आनत स्वर्ग में आदित्यचूल व मणिचूल देव होना, आदित्य का अपराजित बलभद्र एवं मणिचूल का अनंतवीर्य होना, अनन्तवीर्य का नरक जाना, वहाँ से निकलकर मेघनाद होना, अच्युतेन्द्र से प्रतिबोधित हो मेघनाद (मेघरथ) का दीक्षा ले समाधिमरण कर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र होना।

नवम सर्ग–

प्रतीन्द्र का स्वर्ग से च्युत हो रत्नसंचयपुर के राजा क्षेमंकर व रानी कनक चित्रा के वज्रायुध नाम का पुत्र होना, वज्रायुध का लक्ष्मी मती से विवाह होना, मेघनाद के जीव का वज्रायुध पुत्र सहस्त्रायुध होना, बसंत ऋतु का वर्णन सहस्त्रायुध को पूर्व भव के बैरी विद्युददंष्ट्र द्वारा नाग पाश से बाँध बावड़ी में ढांक देना, सहस्त्रायुध का मुक्त हो जाना, क्षेमंकर का जिन दीक्षा ग्रहण करना क्षेमंकर का तीर्थंकर होना, वज्रायुध की परीक्षा हेतु देव का मनुष्य रूप में आना वज्रायुध के पांडित्य से प्रसन्न होना।

ooo

संत दर्शन के दुर्लभ क्षण.....

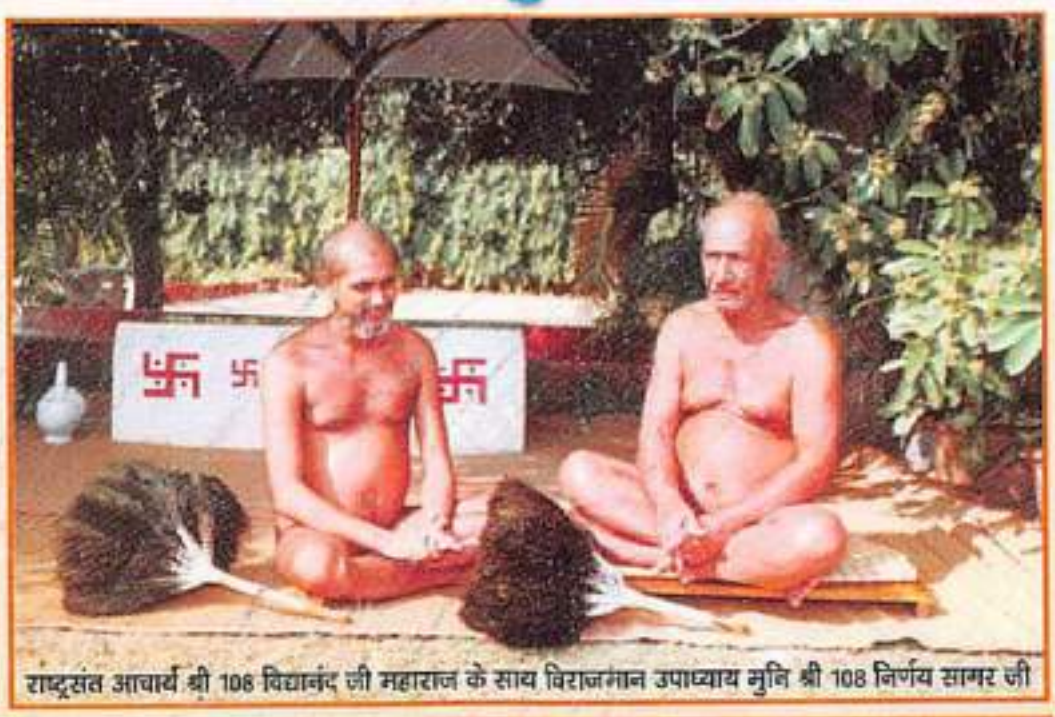

राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानंद जी महाराज के साथ विराजमान उपाध्याय मुनि श्री 108 निर्णय सागर जी

ऐलक श्री एवं क्षु.श्री की शंकाओं का समाधान करते हुये उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर जी

स्वाध्यायरत ऐलक श्री विमुक्त सागर जी

स्वाध्यायरत क्षु.श्री विराक सागर जी

आयें चलें संत दर्शन को.....

राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानंद जी महाराज के साथ विराजमान उपाध्याय मुनि श्री 108 निर्णय सागर जी

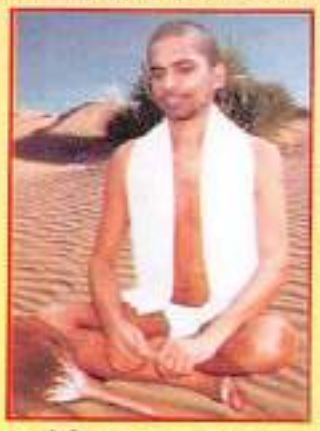

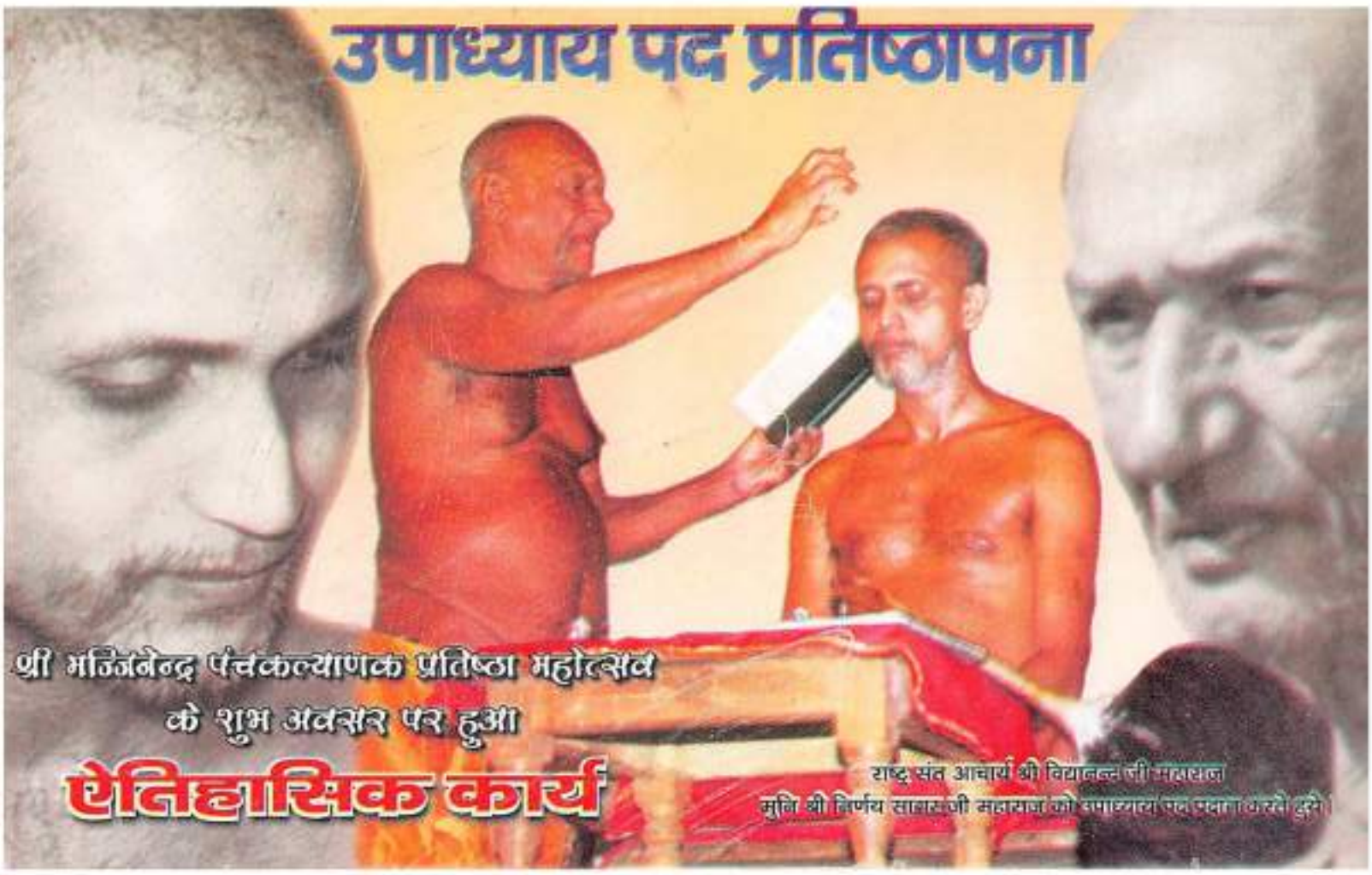
उपाध्याय पद प्रतिष्ठापना
श्री भद्रिजनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
के शुभ अवसर पर हुआ
ऐतिहासिक कार्य
राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज
मुनि श्री निर्णय सागरजी महाराज को उपाध्याय पद प्रदान करते हुये

उपाध्याय पद

श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्स

रचा गया इतिहास.....

.....दिन था रविवार 17 फरवरी 2002 का जब आरम्भ था ऐसे उत्सव का जिसमें एक पत्थर की मूरत को परम पूज्य परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है परन्तु इस उत्सव को महोत्सव बनाया एक ऐसे प्रशस्त कार्य ने जिसे इतिहास सदियों तक भुला नहीं पायेगा क्योंकि यहां पत्थर की मूरत को ही नहीं एक ऐसी मूरत को जिसमें सौम्यता और दिव्यता के द होते हैं और जो साक्षात परमेष्ठी हैं ऐसे मुनिराज श्री निर्णय सागर जी महाराज को राष्ट्रसंत, आध्यात्म रसिक योगी, सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य श्री 108 विद्यानंद जी महाराज ने

उपाध्याय पद प्रतिष्ठापना

के निर्मल संस्कारों से संस्कारित किया ।

र प्रतिष्ठापना

य के शुभ अवसर पर हुआ ऐतिहासिक कार्य

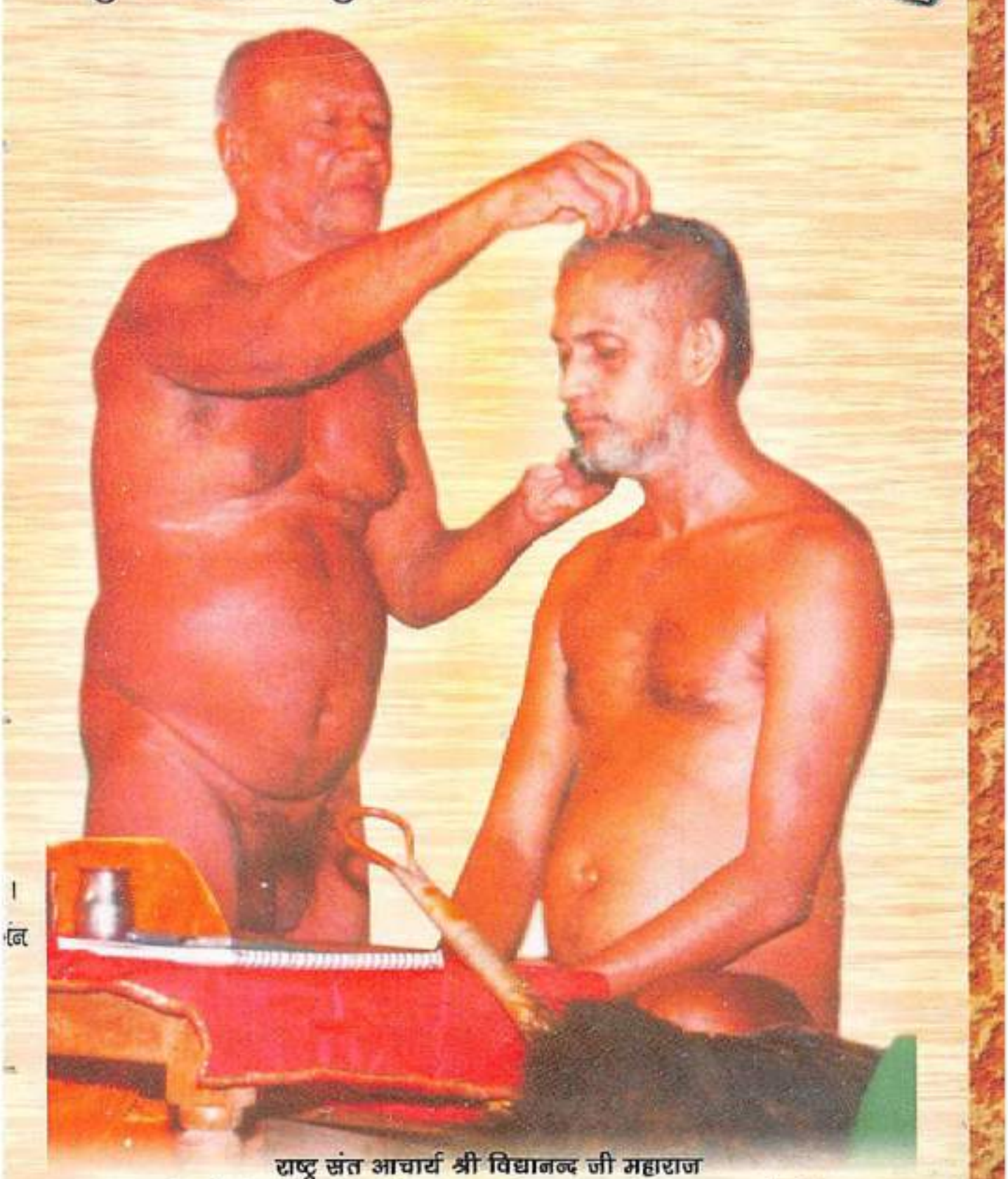

ा

ंध

राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज
मुनि श्री निर्णय सागर जी महाराज को उपाध्याय पद प्रदान करते हुये।

रचा गया इतिहास.....

.....दिन था रविवार 17 फरवरी 2002 का जब आरम्भ था
ऐसे उत्सव का जिसमें एक पत्थर की मूरत को परम पूज्य परमात्मा के
रुप में प्रतिष्ठित किया जाता है परन्तु इस उत्सव को महोत्सव बनाया
एक ऐसे प्रशस्त कार्य ने जिसे इतिहास सदियों तक भुला नहीं पायेगा।
क्योंकि यहां पत्थर की मूरत को ही नहीं अपितु उस मूरत को
जिसमें सौम्यता और दिव्यता के दर्शन होते हैं और जो साक्षात
परमेष्ठी हैं ऐसे मुनिराज श्री निर्णय सागर जी महाराज को
राष्ट्रसंत, आध्यात्म रसिक योगी, सिद्धांत चक्रवर्ती
आचार्य श्री 108 विद्यानंद जी महाराज ने
उपाध्याय पद प्रतिष्ठापना
के निर्मल संस्कारों से संस्कारित किया।

उपाध्याय श्री निर्णय सागर जी द्वारा रचित एवं संपादित साहित्य की एक झलक
भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी की 2600 वीं
जन्म कल्याणक महोत्सव एवं अहिंसा वर्ष की पुनीत अवसर पर
राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज के आशीर्वाद एवं
उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर जी महाराज की प्रेरणा व प्रवासों से
निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला
श्रुत संरक्षण एवं संवर्धन में सार्थक प्रयास
प्रथमानुयोग के ग्रंथों की पुनः नई श्रंखला
पूज्य आचार्य भगवंतो की अमृतमयी वाणी जो समय के साथ कही खो गयी है
उसे जन जन तक पहुँचाने की दिशा में अभूतपूर्व कदम
निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला
उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर जी महाराज

भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव एवं अहिंसा वर्ष के पुनीत अवसर पर

राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज के आशीर्वाद एवं
उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर जी महाराज की प्रेरणा व प्रयास से

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

प्रथमानुयोग के ग्रंथों की पुनः नई श्रंखला

पूज्य आचार्य भगवंतो की अमृतमयी वाणी
जो समय के साथ कहीं खो गयी है
उसकी अद्भुत खोज एवं प्रकाशन
अनुपलब्ध ग्रंथों की खोज में सार्थक प्रयास

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

उपाध्याय श्री निर्णय सागर जी द्वारा रचित एवं संपादित साहित्य की एक झलक

प्राप्ति स्थानः- चन्द्रा कापी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा

आभार

.....जन-जन के कल्याण में समर्थ पूज्य आचार्य भगवंतो द्वारा सृजित महान ग्रंथों जिनमें श्रुत विद्या का असीम दिग्दर्शन होता है ऐसे सत् साहित्य के संरक्षण एवं संवर्धन में आपके द्वारा समर्पित अमूल्य योगदान का **निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला** हार्दिक अभिनन्दन करती है।

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

पुण्यार्जक श्रावक

अमेन्द्र कुमार जैन

B-30, राजगढ़ कालोनी

गली नं 16, नई दिल्ली-31

फोनः 011-2453311

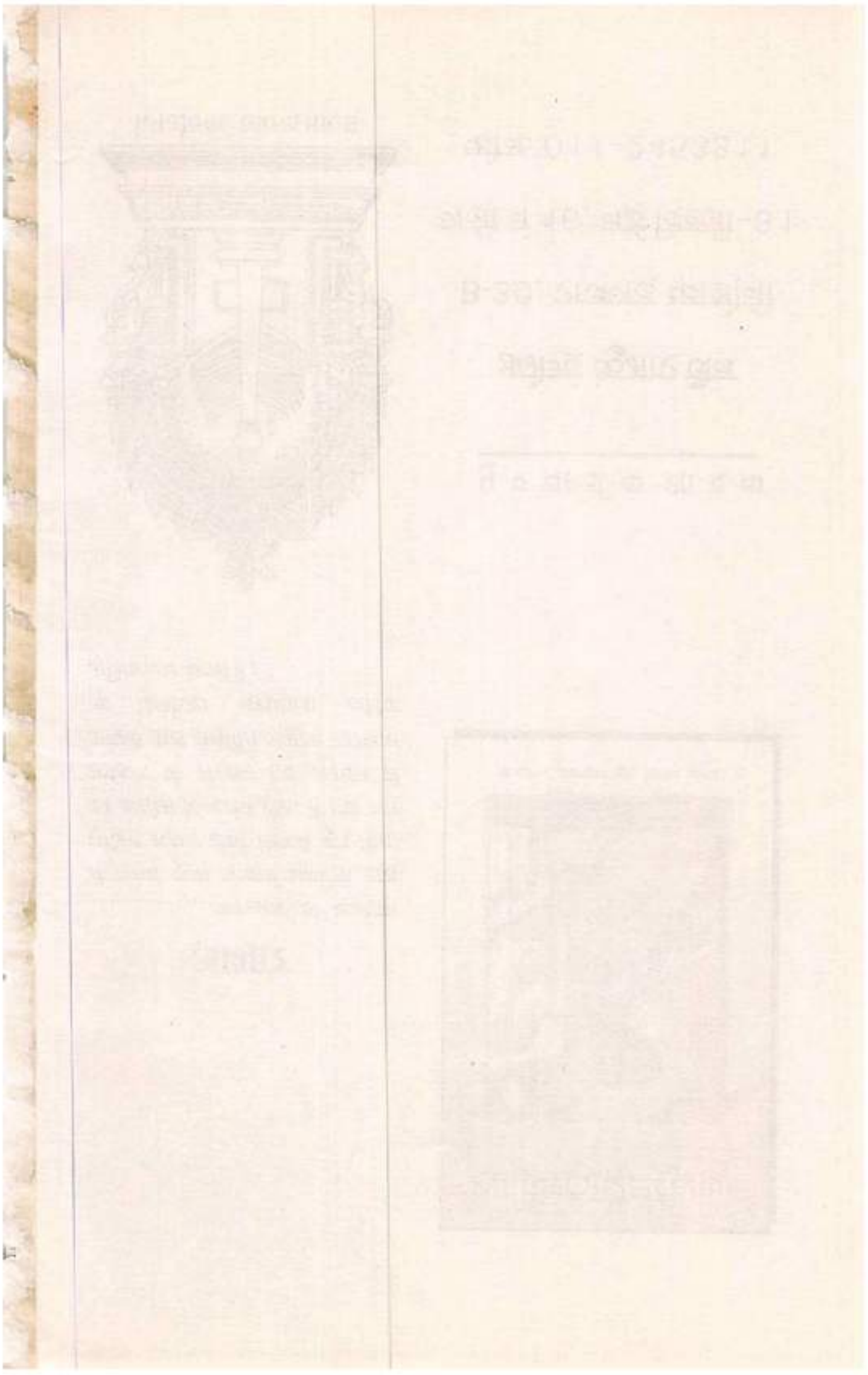

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

श्रीमदसगमहाकविविरचितम्

श्री शान्तिनाथ पुराण–1

श्रियं समग्रलोकानां पायिनीमन पायिनीम्।
बिभ्रतेऽपि नमस्तुभ्यं वीतरागाय शान्तये।।1।।
अशेषभव्यसत्त्वानां संसारार्णवतारणम्।
भक्त्या रत्नत्रयं नौमि विमुक्ति सुखकारणम्।।2।।
लीलोत्तीर्णखिलामेय विपुल ज्ञेयसागरान्।
इन्द्राभ्यर्च्यान्यतीन्चन्दे शुद्धान्गणधरादिकान्1।3।।

* मंगलाचरण *

भवदुःखदावानलदलन को जो सजल वारिद हुए,
जो मोहविभ्रमयामिनी के दमन को दिनकर हुए।
समता सुधा की सरस वर्षा के लिये जो शशि हुए,
जयवंत हों जग में सदा वे शान्ति, सुख देते हुए।।

जो समस्त लोकों की रक्षक तथा अविनाशी लक्ष्मी को धारण करने वाले होकर भी वीतराग हैं—रक्षा सम्बन्धी राग से रहित हैं ऐसे आप शान्ति जिनेन्द्र के लिये नमस्कार हो।।1।। जो समस्त भव्यजीवों को संसार समुद्र से तारने वाला है तथा मोक्षसुख का कारण है उस रत्नत्रय की मैं भक्ति द्वारा स्तुति करता हूँ।।2।। जिन्होंने समस्त अपरिमित विस्तृत ज्ञेय रूपी समुद्र को लीला पूर्वक पार कर लिया है, जो इन्द्रों के द्वारा पूज्य हैं, तथा शुद्ध हैं ऐसे गणधरादिक मुनियों को नमस्कार करता हूँ।।3।।

शान्तिनाथ भगवान का जो पुराण पहले अतिशय बुद्धिमान महात्माओं के द्वारा कहा गया था वह मेरे द्वारा यथाशक्ति कहा जायेगा।।4।। जब कि सर्वज्ञ का भी वचन अभव्यजीवों के लिये नहीं रुचता है तब अज्ञान से पीड़ित दूसरा कौन मनुष्य सर्वमनोहारी वचन कह सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।।5।। मेरे द्वारा यह पुराण न तो कवित्व के अभिमान से कहा जा रहा है और न समय व्यतीत करने के लिये। किन्तु शान्ति जिनेन्द्र की भक्ति से नम्रीभूत चित्त के द्वारा कहा जा रहा है।।6।।

अथानन्तर समस्त द्वीपों के मध्य में स्थित होने पर भी जो अपनी शोभा से सब द्वीपों के ऊपर स्थित हुआ सा जान पड़ता है, ऐसा जम्बूद्वीप है।।7।। उस जम्बूद्वीप में सीता नदी के दक्षिण तट पर स्थित एक वत्सकावती नामका देश है जो पूर्व विदेहों का अपूर्व तिलक है।।8।। जिस देश में वृक्ष और सत्पुरुष समानरूप से सुशोभित होते हैं क्योंकि जिस प्रकार वृक्ष अन्तरार्द्र–भीतर से आर्द्र–गीले होते हैं उसी प्रकार सत्पुरुष भी अन्तरार्द्र–भीतर से दयालु थे। जिस प्रकार वृक्ष सुमनः स्थितिशाली–फूलों की स्थिति से सुशोभित होते हैं उसी प्रकार सत्पुरुष भी सुमनः स्थितिशाली–विद्वानों की स्थिति से सुशोभित थे और जिस प्रकार वृक्ष अपने फलों से इच्छुक जनों को संतुष्ट करते हैं उसी प्रकार सत्पुरुष भी अपने कार्यों से इच्छुक जनों को संतुष्ट करते थे।।9।। जिस देश के वन में तट पर उत्पन्न हुई लताएं प्रतिबिम्ब के बहाने ऐसी दिखाई देती हैं मानों दावानल के भय से सरोवरों की शरण में प्रविष्ट हुई हों।।10।। जहाँ नाना रत्नों की किरणों से व्याप्त वन की भूमि सैंकड़ों इन्द्रधनुषों से व्याप्त वर्षाकालीन मेघ की शोभा को धारण करती है।।11।। जिस देश में विद्याओं के समान निर्मल नदियाँ विद्यमान हैं क्योंकि जिस प्रकार विद्याएं अपने आप में प्रविष्ट–अपनी साधना करने वाले प्राणियों की तृष्णा–आकांक्षा को नष्ट करने में समर्थ होती हैं उसी प्रकार नदियाँ

भी अपने भीतर प्रवेश करने वाले प्राणियों की तृष्णा–प्यास को नष्ट करने में समर्थ थीं और जिस प्रकार विद्याएँ–सत्तीर्थ–समीचीन गुरु से सहित होती है उसी प्रकार नदियाँ भी सत्तीर्थ–जलावतारों– घाटों से सहित थीं।॥2॥ जहाँ पर जंगली हाथी उत्तम राजाओं के समान सुशोभित होते हैं क्योंकि जिस प्रकार जंगली हाथी अच्छिन्नदानसंतान–मद की अखण्ड धारा से युक्त होते हैं उसी प्रकार उत्तम राजा भी दान की अखण्ड धारा से सहित होते हैं। जिस प्रकार जंगली हाथी चारुवंश–पीठ की सुन्दर हड्डी से सहित होते हैं उत्तम राजा भी चारुवंश सुन्दर अर्थात् निर्मल कुल से सहित होते हैं। जिस प्रकार–जंगली हाथी निरंकुश–अंकुश के प्रहार से रहित होते हैं उसी प्रकार उत्तम राजा भी निरंकुश–दूसरों के प्रतिबंध से रहित होते हैं।॥3॥ जिस देश में ग्रामों के समीपवर्ती प्रदेश धान्य के खेतों से घिरे हुए निकटवर्ती प्रदेशों से युक्त पौंडा तथा ईख के खेतों से इतने अधिक सघनरूप से व्याप्त रहते हैं कि उनसे ग्रामों में प्रवेश करना और निकलना कष्टसाध्य होता है।॥4॥ जहाँ पर शरद ऋतु के मेघों के आकार गोधन से सफेदी को प्राप्त हुआ वन ऐसा सुशोभित होता है मानों क्षीरसमुद्र के ज्वारभाटों से ही सुशोभित हो रहा हो।॥5॥ जहाँ पर पर्वत समुद्रों का अनुकरण करते हैं क्योंकि जिसप्रकार पर्वत अनुल्लङ्घनीय होते हैं उसी प्रकार समुद्र भी अनुल्लङ्घनीय होते हैं। जिस प्रकार पर्वत महारत्न बड़े–बड़े रत्नों से युक्त होते हैं उसी प्रकार समुद्र भी महारत्न बड़े–बड़े रत्नों से युक्त होते हैं। जिस प्रकार पर्वत सुतीक्ष्णझषकोटि–अत्यन्त तीक्ष्ण संताप की संतति से युक्त होते हैं उसी प्रकार समुद्र भी अत्यन्त क्रूर करोड़ों मगरमच्छों से सहित होते हैं और जिस प्रकार पर्वत सविद्रुम–विविध प्रकार के वृक्षों से सहित होते हैं उसी प्रकार समुद्र भी सविद्रुम–मूंगाओं से सहित होते हैं।॥6॥ जहाँ पर स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य के द्वारा तथा कामदेव के साधनभूत अर्थात् काम को प्रज्ज्वलित करने वाले हावभाव विलासों के द्वारा भी देवाङ्गनाओं

को लज्जित करती हैं॥7॥ विकार से रहित सम्पत्ति, विनय से सहित यौवन, प्रशमगुण से युक्त शास्त्र, शान्ति से विभूषित शूर–वीरता, परोपकार–रूप प्रयोजन से युक्त धन, धार्मिक कार्य में निपुणता, व्रत और शील की रक्षा करने में निरन्तर तत्परता, अपने गुणों के प्रकट करने में लज्जा और निःस्पृह मित्रता; जहाँ निवास करने वाले सत्पुरुषों की ऐसी चेष्टा देखी जाती है।॥8–20॥

जिस वत्सकावती देश में धनाढ्य पुरुषों के स्थान स्वरूप प्रभाकरी नाम की वह नगरी विद्यमान है जिसमें सूर्य की प्रभा पताकाओं से रुकती रहती है।21॥ जिस नगरी में भवनों के द्वारा न केवल स्वर्ग के भवन जीते गये थे किन्तु महानुभावता–सज्जनता के आधारभूत नगरवासियों के द्वारा देव भी जीते गये थे।।22॥ जहाँ घर के बाग बगीचों में क्यारियों के जल में पड़े हुए प्रतिबिम्बों से वृक्ष ऐसे दिखाई देते हैं मानों जड़ में भी वे पत्तों से युक्त हों।।23॥ जहाँ भवनों के मध्य भाग चलते फिरते लाल कमलों से अथवा उपहार में चढ़ाये हुए चलते फिरते नीलकमलों से सुशोभित रहते हैं।।24॥ जहाँ के सभागृह रत्नमयी दीवालों में प्रतिबिम्बित होने वाले चलते–फिरते मनुष्यों के शरीर से ऐसे सुशोभित होते हैं मानों सजीव चित्रों से युक्त हों।।25॥ जहाँ के त्रिराहे जिन जैनमन्दिरों से सुशोभित हो रहे थे वे सुमेरुपर्वत के समान थे। क्योंकि जिस प्रकार सुमेरुपर्वत अन्तः स्थविबुध–भीतर स्थित रहने वाले देवों से युक्त होते हैं उसी प्रकार जैन मन्दिर भी अन्तःस्थविबुध–भीतर स्थिर रहने वाले विद्वानों से युक्त थे और जिस प्रकार सुमेरुपर्वत सुवर्णरूप निर्मल सारभूत द्रव्य से युक्त होते हैं उसी प्रकार जिनमन्दिर भी सुवर्ण के समान निर्मल द्रव्यों से युक्त थे।।26॥ जिस नगरी की स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती हैं मानों अपनी चतुराई देखने के लिये ब्रह्मा ने उन्हें लोक की श्रेष्ठ वस्तुओं के समूह को एकत्रित कर बनाया था।।27॥ जिस नगरी में अंधेरी रात्रि में भी पति के घर जाने वाली स्त्रियों के अपने आभूषणों की कान्तियाँ चलती फिरती दीपिकाएँ होती हैं।।28॥

जो नगरी नाटकों के समान दिखने वाले नगर वासियों से युक्त थी। क्योंकि जिस प्रकार नाटक सुश्लिष्ट सन्धिबन्धाङ्क–यथा स्थान विनिविष्ट मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहृति इन पांच सन्धियों तथा उनके चौंसठ अङ्गों से सहित होते हैं उसी प्रकार नगरवासी भी सुश्लिष्ट–अच्छी तरह सम्बन्ध को प्राप्त सन्धिबन्धों–अंगोपाङ्गों के जोड़ों से युक्त शरीरों से सहित थे। जिस प्रकार नाटक प्रसन्नामलवृत्ति–प्रसाद गुण से युक्त निर्मल कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती इन चार वृत्रियों से युक्त होते हैं उसी प्रकार नगरवासी भी प्रसन्नामलवृत्ति–प्रसन्न और निर्दोष व्यवहार से युक्त थे तथा जिस प्रकार नाटक आपणमार्गस्थ–बाजार के मार्ग में स्थित होते हैं–प्रचार के लिये आवागमन के स्थानों पर नियोजित किये जाते हैं उसी प्रकार नगरवासी भी बाजार के मार्गों में स्थित रहते थे–सम्पन्न होने के कारण अच्छे स्थानों पर निवास करते थे।।29।। जहाँ नाना प्रकार के मोती मूंगा आदि रत्नों से परिपूर्ण बाजार की शोभा को देख कर कुबेर भी अपनी विभूति को तुच्छ समझने लगता है।।30।। उस नगर का रक्षक राजा वह स्तिमितसागर था जिसने गाम्भीर्य गुण के द्वारा निश्चल समुद्र को पराजित कर दिया।।31।। जो राजा सत्य, त्याग और अभिमान का आधार–भूत होता हुआ भी उनकी अन्य कोटि को प्राप्त था, यह एक आश्चर्यकारी चेष्टा थी। परिहार पक्ष में सत्य, त्याग और अभिमान की उत्कृष्ट सीमा को प्राप्त था।।32।। न्याय से सुशोभित रहने वाले जिस राजा में इतना ही अन्याय था कि उसने यद्यपि अन्याय शब्द विद्यमान था फिर भी उसे पृथ्वी पर बल पूर्वक लुप्त कर दिया था। भावार्थ–उसने अन्याय शब्द को पृथ्वी से जबरन नष्ट कर दिया था। इतना ही उसका अन्याय था।।33।। श्रुत–शास्त्रज्ञान से अधिक होने पर भी जिस राजा का श्रुत के विषय में निरन्तर उद्योग रहता था। यह ठीक ही है क्योंकि गुणी मनुष्य गुणों का संचय करने में संतोष को प्राप्त नहीं होते हैं।।34।। अन्य

राजाओं के द्वारा दुःख से सहने करने योग्य प्रताप को धारण करता हुआ भी जो राजा द्वितीय चन्द्रमा के समान अपने चरणों की सेवा करने वाले (पक्ष में अपनी किरणों की सेवा करने वाले) मनुष्यों की तृष्णा–लालसा (पक्ष में प्यास) को नष्ट करता था।35।। जिसकी बुद्धि नीति को विस्तृत करती थी, नीति पृथ्वी का पालन करती थी और पृथ्वी वस्तुओं को पूर्ण करती थी इस प्रकार जिस राजा ने इन बुद्धि आदि के द्वारा सब सहाध्यायियों को अलंकृत किया था।36।। जो राजा अपराध करने पर भी वध्य पुरुष का घात नहीं करता था सो ठीक ही है क्योंकि दण्ड देने योग्य मनुष्य चाहे बड़ा हो चाहे छोटा, समर्थ मनुष्य की ही क्षमा क्षमा कहलाती है।37।। अनाथ वत्सल तथा महाप्रतापी जिस राजा के समस्त पृथ्वी की रक्षा करने पर प्रजा स्वप्न में भी शरणार्थिनी–शरण की इच्छुक नहीं थी। भावार्थ–उस राजा के राज्य में प्रजा निर्भय होकर निवास करती थी। कोई किसी से भयभीत होकर किसी की शरण में नहीं जाता था।38।। जान पड़ता है जिस राजा ने दया प्रकट करने के लिये अपने प्रिय गुणों को भी निर्वासित शत्रुओं के साथ लोक के अन्त तक भेज दिया था।39।। अपने समान देखकर समीचीन सेवकों में प्रदान की हुई संपदाएँ जिस राजा की अन्तरज्ञता को प्रकट करती थीं। भावार्थ–वह राजा सत् और असत् सेवकों के अन्तर को जानता था इसलिये सत् सेवकों को अपने समान समझ कर खूब सम्पत्ति देता था।40।। अथानन्तर प्रजा का कल्याण करने वाले उस राजा की सती–शीलवती स्त्री के आचार से विभूषित दो स्त्रियाँ थीं।41।। उनमें पहली स्त्री वसुन्धरा थी जिसने क्षमा के द्वारा पृथ्वी को जीत लिया था और दूसरी स्त्री वसुमती नामकी थी जो पातिव्रत्य धर्म से युक्त तथा लज्जा रूपी धन से सहित थी।42।। मनोहर राजा, न केवल नीति और लक्ष्मी के साथ रमण करता था किन्तु उन सुन्दर दोनों स्त्रियों के साथ भी यथासमय रमण करता था।43।। महादेवी वसुन्धरा के अपराजित नाम का पुत्र हुआ जो युद्धों में कभी भी शत्रुओं के द्वारा

पराजित नहीं होता था।।44।। बड़े आश्चर्य की बात थी कि जो अपराजित उत्पन्न होते ही पूर्णचन्द्रमा के समान था। क्योंकि जिस प्रकार पूर्णचन्द्रमा कुन्द के समान गौरवर्ण होता है उसी प्रकार वह अपराजित भी कुन्द के समान गौरवर्ण था। जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमा प्रसन्नात्मा–निर्मल होता है, उसी प्रकार वह अपराजित भी प्रसन्नता–आह्लादयुक्त था और जिसप्रकार पूर्णचन्द्रमा कुमुदयति–कुमुदों के उत्तर काल को विस्तृत करता है उसी प्रकार वह अपराजित भी कुमुदायति–पृथिवी के हर्ष की वृद्धि को विस्तृत करने वाला था।।45।। दुःसह तथा सहज प्रताप से सहित जो अपराजित शरद ऋतु के सूर्य के समान शोभायमान होता हुआ पद्माभिवृद्धि–लक्ष्मी की वृद्धि के लिये (पक्ष में कमलों की वृद्धि के लिये) था।।46।। जिस गुणज्ञ अपराजित ने, न केवल स्वभाव से सरल और सुन्दर अवयवों के द्वारा पिता को अतिक्रान्त किया था किन्तु गुणों के द्वारा भी अतिक्रान्त किया था। भावार्थ–अपराजित, शरीर और गुण–दोनों के द्वारा पिता से श्रेष्ठ था।।47।। जिसकी कुशाग्र के समान तीक्ष्ण बुद्धि से राज विद्याओं की और चन्द्रमा के समान धवल कीर्ति के द्वारा दिशाओं की मर्यादा जान ली गयी थी। भावार्थ–वह अपनी बुद्धि से राजविद्याओं का पूर्ण ज्ञाता था उसका निर्मल यश समस्त दिशाओं में छाया हुआ था।।48।। नीतिमार्ग का जानकार होने पर भी जिसकी दया सहज–जन्मजात ही थी सो ठीक ही है क्योंकि अच्छी तरह अभ्यास किये हुये शास्त्र के द्वारा भी स्वभाव दूर नहीं किया जा सकता है। भावार्थ–राजनीति उसकी स्वाभाविक दया को नष्ट नहीं कर सकी थी।।49।। सम्पूर्ण सदाचार अन्य क्षुद्र पुरुषों में रहने के लिये अवकाश न पाकर जिस महान् आत्मा में ही एकत्रित होकर निवास कर रहा था।।50।। जिस प्रकार महासत्त्व–बड़े–बड़े जलजन्तुओं से युक्त समुद्र अकेला हर अनन्त निर्मल रत्नों का स्थान होता है उसी प्रकार महासत्त्व–महापराक्रमी अपराजित अकेला ही अनन्त निर्मल गुणों का स्थान था।।51।। जिसकी भुजाओं से उत्पन्न दुर्वाद प्रतापरूपी अग्नि से तपाया

हुआ भी शत्रु राजाओं का समूह गर्मी से रहित था, यह आश्चर्य की बात थी (पक्ष में अहंकार से रहित था)।52।। जो लक्ष्मीरूपी हस्तिनी के बांधनों के खम्भा के समान था तथा जिसकी लम्बाई पृथ्वी के उत्कृष्ट रक्षाभवन के समान थी ऐसी भुजा क्या शोभायमान नहीं हो रही थी ?।53।। जो गजराज होकर भी मद की शोभा से रहित था (पक्ष में अनेक हाथियों का स्वामी होकर भी गर्व की लीला से रहित था) तथा जो राजसिंह–श्रेष्ठसिंह होकर भी शान्ति से सुशोभित पराक्रम से युक्त था (पक्ष में श्रेष्ठ राजा होकर भी जो क्षमा से विभूषित पराक्रम से युक्त था)।54।।

तदन्तर राजा स्तिमितसागर की दूसरी रानी वसुमती ने पुत्र उत्पन्न किया। जिसके उत्पन्न होने पर न केवल रानी वसुमती, स्वयं ही सुशोभित हुई थी किन्तु राजा भी सुप्रजा–उत्तम संतान से युक्त हुए थे।55।। विशाल पराक्रम का धारी जो पुत्र नाम से ही अनन्तवीर्य नहीं हुआ था किन्तु समस्त राजवंशों को उखाड़ देने वाले तेज के द्वारा भी अनन्तवीर्य हुआ था।56।। 'मेरी दक्षिण भुजा ही समस्त पृथ्वी का पालन करेगी' इस अभिप्राय से जो बालक होता हुआ भी सेना को विभूति के लिए ही मानता था। भावार्थ–उसे अपने बाहुबल पर विश्वास था सेना को तो वह मात्र वैभव का कारण मानता था।57।। लोकों के नीचे रहने वाले नागेन्द्र के भोगीन्द्रपन कैसे हो सकता है ? इस प्रकार जो अभिमान–वश जोर से कहा करता था। भावार्थ–शेषनाग तो तीनों लोकों के नीचे रहता है अतः वह भोगीन्द्र–भोगी पुरुषों का इन्द्र (पक्ष में नागों का इन्द्र) कैसे हो सकता है ? भोगीन्द्र तो मैं हूँ जो लोकों के ऊपर रहता हूँ इस प्रकार वह अभिमान वश जोर देकर कहा करता था।58।। उग्र पराक्रम से सुशोभित होने वाले जिस अनन्त वीर्य को साम आदि चार उपायों में दण्ड उपाय ही अच्छा लगता था और समस्त रसों में वीर रस ही इष्ट था।59।। ऐसा जान पड़ता था मानों अपना रूप देखने के लिये वीर लक्ष्मी ने उत्तम लक्षणों से सहित उस प्रकार का मणिमय स्वयं

ही निर्मित किया था। भावार्थ–वह अनन्तवीर्य, वीरलक्ष्मी का स्वरूप देखने के लिये मानो स्वनिर्मित मणिमय दर्पण ही था।।60।। एकान्त शूरता, शौण्डीरता तथा प्रशंसा से जिसका चित्त अहंकार से युक्त हो रहा है ऐसे जिन अनन्तवीर्य की बाल क्रीड़ा पिंजड़ों में स्थित सिंहों के साथ हुआ करती थी।।61।। शरद ऋतु के आकाशतल के समान श्याम वर्ण, पूरे ऊंचे शरीर को धारण करने वाला जो अनन्त वीर्य, लक्ष्मी के इन्द्रनीलमणि निर्मित चलते फिरते महल के समान अत्यधिक सुशोभित हो रहा था।।62।। अपराजित और अनन्तवीर्य में भेद से रहित स्वाभाविक प्रीति थी क्योंकि वह अक्षरों के बिना अन्यभव के सम्बन्ध को मानों कह रही थी।।63।।

प्रसन्न तथा कठिनाई से देखने योग्य उन दोनों पुत्रों से राजा स्तिमितसागर, चन्द्रमा और सूर्य से युक्त दूसरे पूर्वाचल के समान सुशोभित हो रहा था।।64।।

किसी समय प्रतीहार–द्वारपाल ने जिसकी सूचना दी थी ऐसे वनपाल ने आकर सभा के भीतर बैठे हुये राजा को प्रणाम कर इस प्रकार के वचन कहे।।65।। जिसमें शीघ्र ही षड् ऋतुओं के पुष्प लग गये हैं ऐसे पुष्पसागर नामक उद्यान में भगवान् स्वयंप्रभ जिनेन्द्र देवों के साथ विद्यमान हैं।।66।। इस प्रकार कहने वाले वनपाल के लिये पारितोषिक देकर राजा उन जिनेन्द्र को नमस्कार करने हेतु नगरवासी तथा सैनिकों के साथ उनके सन्मुख गया।।67।। पूजनीय मानस्तम्भों को दूर से देख कर राजा वाहन से उतर पड़ा और पुत्रों सहित उसने हाथ जोड़ कर राजलक्ष्मी के साथ सभा में प्रवेश किया।।68।। जिसकी आत्मा भक्ति से शुद्ध थी तथा जो जानने योग्य कार्यों को जानता था ऐसे राजा ने सर्व हितकारी उन चतुरानन स्वयंप्रभ जिनेन्द्र की तीन प्रदक्षिणाएं दीं और अपना नाम प्रकट कर उन्हें नमस्कार किया।।69।। तदनन्तर राजा ने पुरुषार्थ को सिद्ध करने वाले धर्म को अच्छी तरह

सुन कर तथा ज्येष्ठ पुत्र को राज्यलक्ष्मी सौंपकर दीक्षा ले ली।।70।। जैन मार्ग के उत्तम भाव को न जानने वाले स्तिमितसागर मुनिराज ने समवसरण के भीतर स्थित महान् ऋद्धियों के धारक धरणेन्द्र को देखकर निदान बन्ध कर लिया–मैं तपश्चरण के फलस्वरूप धरणेन्द्र होऊं ऐसा विचार किया।।71।। जिसे तत्त्वों में श्रद्धा उत्पन्न हुई थी ऐसे अपराजित ने भव्यत्वभाव से अनुगृहीत होने के कारण वहां साक्षात् पांच अणुव्रत ग्रहण किये।।72।।

परन्तु अनन्तवीर्य के हृदय में योग्यता न होने से तीर्थंकर भगवान् स्वयंप्रभ जिनेन्द्र के भी वह वचन उसी प्रकार स्थान नहीं प्राप्त कर सके जिस प्रकार कि चन्द्रमा की किरणें कमल में स्थान प्राप्त नहीं करतीं।।73।।

अपराजित स्वयंप्रभ जिनेन्द्र को बार–बार प्रणाम कर तथा तीन प्रदक्षिणाएं देकर भाई अनन्तवीर्य तथा नागरिक जनों के साथ उस समवसरण सभा से बाहर निकला।।74।। तदनन्तर बाहर खड़े हुए वाहन पर सवार होकर वह राजा स्तिमितसागर के दीक्षा लेने सम्बन्धी उद्वेग से मन्दशोभा युक्त नगरी को प्राप्त हुआ। भावार्थ–राजा के दीक्षा लेने से नगरी में शोक छाया हुआ था अतः शोभा कम थी।।75।। हर्ष रहित मनुष्यों से युक्त राज भवन में प्रवेश कर उसने उद्वेग से युक्त समस्त माताओं को प्रणाम पूर्वक स्वयं संबोधित किया।।76।। समस्त प्रजाजनों का राजा के समान यथा योग्य सम्मान कर धीरवीर अपराजित धीरे–धीरे अपने भवन की ओर गया। उस समय मन्त्री आदि मूल वर्ग उसके पीछे चल रहा था।।77।। वहां मन्त्रियों के अनुरोध से उसने तरुण भाई अनन्त वीर्य के साथ अलसाये मन से दिन की समस्त क्रियाएं कीं।।78।।

तदनन्तर एक समय राजाओं के समूह द्वारा जिसका अभिषेक किया गया था ऐसे जितेन्द्रिय अपराजित ने वंश परम्परा के क्रम से ही राज्य को प्राप्त किया था तृष्णा से नहीं।।79।। उसने यद्यपि सिंहासन, सफेद छत्र और चामरों को स्वीकृत किया था तथापि भाई–अनन्तवीर्य

के लिये सम्पूर्ण पृथ्वी प्रदान कर दी और स्वयं युवराज ही बना रहा।।80।। यद्यपि राज्यभार को धारण करने वाला अनन्तवीर्य अदम्य था तथापि उसे अपने आपके द्वारा द्वितीय बनाकर–अपना अभिन्न सहायक बनाकर किसी खेद के बिना उसने जगत् के समस्त भार को धारण किया था।।81।। भीतर स्थित काम क्रोध लोभ मोह मद और मात्सर्य इन छह अन्तरङ्ग शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से वह जैसा सुशोभित हो रहा था वैसा शरण में आये हुए शत्रु पक्ष के राजाओं से सुशोभित नहीं हुआ।।82।। यथा स्थान स्वीकृत किये हुए सामादि उपायों के द्वारा उसने न केवल अत्यन्त दूरवर्ती परलोक शत्रुसमूह को जीता था किन्तु यथास्थान स्वीकृत किये हुये व्रतों के द्वारा परलोक–नरकादि परलोक को भी जीत लिया था।।83।। उत्साहशक्ति, मन्त्रशक्ति और प्रभुत्वशक्ति इन तीन शक्तियों से युक्त अपराजित ने एक एक शक्ति को धारण करने वाले शेष राजाओं को युद्ध में जीत लिया था इसमें क्या कहना है ? भावार्थ–अपराजित उपर्युक्त तीन शक्तियों से सहित था जबकि शेष राजा एक शक्ति–शक्ति नामक एक ही शस्त्र को धारण कर रहे थे अतः उनका जीता जाना उचित नहीं था।।84।। जो पञ्चाङ्ग–पांच महाव्रतरूपी मन्त्र से युक्त था (पक्ष में सहाय, साधन के उपाय, देशविभाग, काल विभाग और आपत्ति का प्रतिकार इन पाँच अङ्गों से सहित था) तथा जिसने इन्द्रियों की स्थिति को जीत लिया था ऐसा राजा अपराजित सिंहासन पर स्थित होता हुआ भी क्षमा–पृथिवी अथवा शान्ति से युक्त मानों दूसरा मुनि ही था।।85।। साम, दान और भेद ये तीन उपाय ही जिसे प्रिय थे ऐसा अपराजित जब सफलता के साथ पृथ्वी की रक्षा कर रहा था तब दण्ड–दण्ड नामक उपाय (पक्ष में फल तोड़ने के लिये फेंके गये डंडे) की गति अन्य उपाय न होने से दुरारोह–अत्यन्त ऊँचे वृक्ष पर ही हुयी थी। भावार्थ–जिस पर चढ़ना कठिन है ऐसे वृक्ष के तोड़ने के लिये जिस प्रकार दण्ड (डंडे) का उपयोग किया जाता है उसी प्रकार जिसको साम आदि तीन उपायों के द्वारा जीतना संभव नहीं था उसी को जीतने के लिये अपराजित दण्ड–युद्ध नामक उपाय को अङ्गीकृत करता

था।।86।। नीतिशास्त्र के अच्छे ज्ञाता भी समस्त ग्रन्थों से संशय कर स्थित देखे जाते है परन्तु इस अपराजित में वह नीति का मार्ग सदा मूर्तिमान होकर स्थित रहता था भावार्थ–नीति शास्त्र के बड़े–बड़े ज्ञाता भी कदाचित् किसी शास्त्र में संशयापन्न देखे जाते हैं परन्तु वह अपराजित मानों नीति मार्ग की मूर्ति ही था अतः वह कभी भी संशयापन्न नहीं होता था।।87।।

यद्यपि उसका भाई अनन्तवीर्य गर्व से युक्त था तथापि वह उसके संसर्ग से नीतिमान हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि महात्माओं का सदा योग प्राप्त होना किसके कल्याण के लिये नहीं होता ? अर्थात् सभी के कल्याण के लिये होता है।।88।। अविभक्त उत्कृष्ट लक्ष्मी को धारण करने वाले वे दोनों भाई एक कल्पलता से युक्त कल्पवृक्ष के समान सुशोभित हो रहे थे।।89।।

किसी समय कोई अपरिचित विद्याधर आया और दोनों राजाओं–अपराजित और अनन्तवीर्य को बार–बार प्रणाम कर इस प्रकार के वचन कहने लगा।।90।। सार्थक नाम को धारण करने वाले दमितारी चक्रवर्ती सभा में बैठे हुऐ थे कि उन्होंने शीघ्र ही आकाश से उतरते हुऐ नारद मुनि को देखा।।91।। वे जब तक पृथ्वी पर नहीं आ पाये तब तक चक्रवर्ती ने आसन से उठ कर उन्हें प्रणाम किया। आने पर उनकी पूजा की और तदनन्तर क्रम से उन्हें आसन पर बैठाया।।92।। जब नारद जी विश्राम कर चुके तब उनसे उनके आगमन का कारण पूछा। तदनन्तर नारदजी बड़ी प्रसन्नता से कहने लगे–हे श्रीमान्! सुनिये–।।93।।

एक प्रभाकारी नाम की नगरी है जो आपको भी विदित है। भाई के ऊपर पृथ्वी का भार सौंपकर अपराजित उसका शासन करता है।।94।। पिछले दिन उसके पास दो गायिकाएं गा रहीं थीं। उनमें एक का नाम किरातिका था और दूसरी का नाम बर्बरिका।।95।। राजा अपराजित जितेन्द्रिय होने पर भी उनके गायन से विवश हो गये इसलिये उन्होंने आते हुए मुझे नहीं देखा। ठीक ही है क्योंकि विषय की इच्छा रखने वाला कौन मनुष्य सचेतन रहता है–सुध बुध से युक्त होता है ? अर्थात् कोई

नहीं।96।। इसलिये मैं आया हूँ। वे योग्य गायिकाएं तुम्हारी ही संगति को प्राप्त हों। इसके सिवाय मुझ मुनिका और कुछ कहना अनुचित है।97।।ऐसा कहकर जब नारदजी कहीं चले गये तब चक्रवर्ती दमितारि ने उन गायिकाओं के लिये मुझ दूत को आपके पास भेजा है।98।। इस प्रकार आने का समाचार कह कर उस दूत ने निकटवर्ती मन्त्री के हाथ में कुछ मुहरबंद भेंट दी।99।।

तदनन्तर राजा ने उस दूत को निवास करने के लिये स्वयं विदा किया और मन्त्री द्वारा मुहरबंद भेंट खोलने पर पूर्ण चांदनी को देखा। भावार्थ–मन्त्री ने ज्योंही भेंट को खोला त्योंही पूर्ण चांदनी जैसा प्रकाश छा गया।।100।। मन्त्री द्वारा उठाकर आगे रखे हुए हार को जो कि दूसरे चन्द्रमा के समान जान पड़ता था, राजा बहुत काल तक ऐसा देखता रहा मानों अपने यश की मूर्तिवन्त राशि को ही देख रहा हो।।101।। उस हार को देख राजा मोह को प्राप्त हो गया मूर्च्छित हो गया। भाई तथा अन्य सभासदों ने जब पङ्खा आदि के द्वारा उसे मोह से दूर किया तब उसे पुनः जाति स्मरण हो गया।।102।। अपने और पर के सम्बन्ध तथा अपने नाम का स्मरण करते हुए उन दोनों के आगे पूर्वजन्म में आराधित विद्याएं प्रकट हो गयीं।।103।।

द्वारपालों के द्वारा सामन्तों और समस्त अन्तरङ्ग समिति को दूर हटा कर मन्त्रियों ने राजा से कहा कि मूर्च्छा का कारण कहिये। राजा कहने लगा कि विद्याधर के हार से मुझे विदित हुआ कि मैं इस भव से तीसरे भव में अमिततेज नाम का अनुपम विद्याधर राजा था।।104।। प्रसन्न और निर्मल बुद्धि से सहित यह विद्याधर मेरे पिता का भानेज था और मेरा छोटा भाई अनन्तवीर्य वहां श्रीविजय नाम का राजा था। इस प्रकार मन्त्रियों के आगे कह कर निज और पर का उपकार करने वाले राजाधिराज अपराजित ने जिनेन्द्र भगवान की पूजा की। पश्चात् समीचीन सम्पदाओं की वृद्धि के लिये विद्याओं को अर्घ्य दिया।।105।।

इस प्रकार महाकवि असगकवि की कृति शान्तिपुराण में श्रीमान् अपराजित राजा के विद्याएं प्रकट होने का वर्णन करने वाला प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

द्वितीय सर्गः

अथानन्तर किसी समय विशाल लोचन तथा दीर्घदर्शी राजा ने छोटे भाई और मन्त्रियों के साथ यथा समय मन्त्रशाला में प्रवेश किया।।1।। अपने चित्त के समान उन्नत आसन पर बैठकर राजा ने इन सब के आगे जो जैसा वृद्ध था तदनुसार इस अन्य नीति का कथन किया।।2।। गायिकाओं की याचना का बहाना लेकर दमितारि ने रत्नों की भेंट सहित दूत को मेरे पास किसलिये भेजा है।।3।। जिसका मन्त्र अत्यन्त गुप्त है तथा जिसके शरीर और हृदय की चेष्टा संवृत है–प्रकट नहीं है ऐसे उस नीतिज्ञ दमितारि की चेष्टा विधाता की चेष्टा के समान अत्यन्त दुर्ज्ञेय है–कठिनाई से जानने के योग्य है।।4।। अथवा याचन भङ्ग होने के भय से क्या उसने ऐसा रत्नों का उपहार भेजा है ? क्योंकि लोक में उसके समान दूसरा लोक व्यवहार का ज्ञाता नहीं है।।5।। साम और दान से रहित मनुष्य कार्य के अन्त को प्राप्त नहीं होता सो ठीक ही है क्योंकि समर्थ होने पर भी कौन मनुष्य भुजाओं के बिना ताड़ वृक्ष पर चढ़ सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।।6।। लोग दान रहित मनुष्य को तृण भी नहीं मानते–तृण से भी तुच्छ समझने लगते हैं। देखो, दान–मद रहित ऊँचे हाथी को भी लोग तृण लाने के लिये चलाते हैं। भावार्थ–जिस प्रकार लोक में दानरहित–मदरहित हाथी की कोई प्रतिष्ठा नहीं है उसी प्रकार दान रहित–त्याग रहित मनुष्य की भी कोई प्रतिष्ठा नहीं है।।7।। इस उपहार रूप दान के बहाने क्या वह हम लोगों में मिलकर परमार्थ से हमारा विध्वंस करना चाहता है।।8।। असमय में पुष्पित, विकार सूचक वृक्ष से जिस प्रकार ज्ञानी जीव अत्यंत भयभीत होता है उसी प्रकार राजा की आकस्मिक प्रसन्नता से ज्ञानी जीव अत्यंत भयभीत होता है।।9।। मन में अन्य, वचन में अन्य और चेष्टा में अन्य, इस प्रकार की जो प्रवृत्ति स्त्री में असदाचार कहलाती है वह जिगीषु राजा में

प्रशंसनीय मानी जाती है। भावार्थ–स्त्री के मन में कुछ हो, वचन में कुछ हो और चेष्टा में कुछ हो तो स्त्री का दुराचार कहलाता है परन्तु विजिगीषु–जीत की इच्छा रखने वाले राजा के यह सब प्रशंसनीय आचार कहा जाता है।॥0॥ इसलिये उसके विषय में हम लोगों को क्या करना चाहिये ? यह कह कर राजा अपराजित चुप हो रहे तब सभासदों द्वारा नेत्र से अनुज्ञा प्राप्त कर सन्मति मंत्री इस प्रकार कहने लगा।॥1॥

नीति के सार स्वरूप नय का कथन आपके विश्रान्त होने पर जो कोई अन्य पुरुष कुछ कहना चाहता है वह सब आपकी ही प्रतिध्वनि होगी। भावार्थ–आप राजनीति का यथार्थ वर्णन कर चुके हैं अतः किसी अन्य मनुष्य का कथन आपके कथन के अनुरूप ही होगा।॥2॥ फिर भी इस विस्तृत प्रकृत वस्तु का कुछ स्वरूप मात्र किसी तरह मेरे द्वारा कहा जाता है। भावार्थ–यद्यपि आपके कह चुकने के बाद मेरे कथन की आवश्यकता नहीं है तथापि चूंकि यह वस्तु बहुत विस्तृत है इसलिये इसको कुछ स्वरूप मात्र मैं किसी तरह कहता हूँ।॥3॥ जिसने पहले ही समस्त विद्याधर राजाओं को अपने अधीन कर लिया है ऐसे उस दमितारि प्रभु के पुनरुक्त के समान पीछे चक्ररत्न प्रकट हुआ है। भावार्थ–चक्ररत्न के प्रकट होने का फल समस्त विद्याधर राजाओं को अपने अधीन करना था। परन्तु यह कार्य वह पहले ही कर चुका है अतः पश्चात् चक्ररत्न का प्रकट होना पुनरुक्त के समान है।॥4॥ बुद्धिमान राजा को पहले इसका अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये कि शत्रु और अपनी सेना में अत्यधिक अधिकता किसकी है ? इसी तरह दोनों के देश, काल तथा क्षय और वृद्धि का भी विचार करना चाहिये।॥5॥ जो राजा गुणों की प्रतिकूलता से शत्रु के साथ विग्रह करना चाहता है वह मूर्ख स्वयं अपने ऊपर वृक्ष गिराता है। भावार्थ–शत्रु के बल की अधिकता, अपने बल की हीनता, शत्रु के देश काल की अनुकूलता; अपने देश काल की प्रतिकूलता तथा शत्रु की वृद्धि और अपनी हीनता के रहते हुये भी शत्रु से युद्ध छेड़ता है वह अपने आपको नष्ट करता

है।।6।। जो दमितारि विद्या से विनम्र मनुष्यों का तिलक–तिलक वृक्ष (पक्ष में श्रेष्ठ) होता हुआ भी वृक्ष नहीं तथा सत्पुरुषों का सेवनीय होता हुआ भी जो वृद्धजनों की स्वयं सेवा करता था।।7।। अन्तरंग में स्थित काम क्रोध आदि छह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से यश रूपी धन को धारण करने वाला जो राजा अपने स्थानों में गूढ़ पूरुषों–गुप्तचरों को प्रयुक्त करने की आज्ञा देता था।।8।। जन्म जात पूर्ण वीरता और शूरता से सहित जो राजा शत्रु के द्वारा प्रयुक्त गूढ़ पुरुषों का प्रतिकार करता था।।9।। जो स्वकीय प्रताप से सुशोभित अपने देश में करने योग्य और न करने योग्य पक्षों में से एक पक्ष ही की रक्षा करने में सदा तत्पर रहता था।।20।। शत्रु के देश में होने वाले कृत्य और अकृत्य पक्ष की उपकार विधि को शीघ्रता से जानने वाला उसके समान दूसरा देश नहीं होगा। भावार्थ–वह दमितारि शत्रु देश में होने वाले करणीय और अकरणीय कार्यों के परिणाम को अच्छी तरह जानता है।।21।। जो अपने मन्त्र को अच्छी तरह छिपा कर रखता है, सप्त व्यसनों से रहित है, निरन्तर आत्म रक्षा में तत्पर रहता है और सब ओर से प्रसिद्ध शूरवीर भी है।।22।। जो मण्डलेश्वरों के द्वारा अनुग्राह्य है–सब मण्डलेश्वर जिसके हित का ध्यान रखते हैं, जो सन्धि विग्रह आदि छह गुणों के प्रयोग को जानता है, दुर्गम स्थानों को प्राप्त करने वाले उपायों का जानकार है और बुद्धिमान जनों को इष्ट है।।23।। जो बलिष्ठ जनों के प्रपञ्च पूर्ण प्रयोग को जानता है, शक्ति से युक्त है, सामन्तों से सहित है तथा मित्ररूप सम्पत्ति से विभूषित है।।24।। जिसमें मन्त्री आदि वर्ग सदा अनुरक्त है, जो स्वभाव से ही शत्रुओं को संतप्त करने वाला है तथा जो सूर्य के समान स्वयं नित्य ही उदय–अभ्युदय से युक्त है।।25।। ऐसे उस दमितारि ने सब ओर से आपको अच्छी तरह अपने समान देखकर गायिकाओं को प्राप्त करने के लिये साम और दान के द्वारा दूत भेजा है।।26।। इस समय आपको उसके पास साम रूप उपहार ही प्रेषित करना चाहिये। प्रकरण के अनुरूप जो प्रतिकार अपेक्षित है उसे पीछे कर सकोगे।।27।। इस प्रकार की वाणी कहकर जब सन्मति मन्त्री

चुप हो रहे तब अनन्तवीर्य ने यह कहा। अनन्तवीर्य उस समय यद्यपि क्रुद्ध तथापि अपने आकार को निश्चल बनाये हुये था। भावार्थ–भीतर से कुपित होने पर बाहर शान्त दिखायी देता था।।28।।

आपने नीति का यह तत्व अच्छी तरह कहा है। आपका यह वचन सर्वश्रेष्ठ है, उत्कृष्ट अर्थ से सहित है तथा प्राप्त अवसर को सिद्ध करने वाला है–समयानुरूप है।।29।। यद्यपि आप अच्छी तरह जाने हुए समस्त शास्त्रों के रहस्य से शोभायमान हो रहे हैं फिर भी आपने प्रश्न–कर्ता स्वामी के अभिप्राय को नहीं समझा यह आश्चर्य की बात है।।30।। दूत ने पहले, चक्रवर्ती (प्रथम सर्ग श्लोक 91) आदि श्लोकों को आदि लेकर जो अहंकार पूर्ण वचन कहे थे वे बालक को भी अच्छे नहीं लगते फिर प्रभु–अपराजित महाराज को अच्छे कैसे लग सकते हैं।।31।।

उसने उसी एक प्रथम वाक्य के द्वारा भीतर छिपे हुये भेद और दण्ड उपायों को एक साथ प्रस्तुत किया था। यह दूसरे नहीं जानते।।33।। सभा में किसी के द्वारा नाना अर्थों से युक्त वचन के कहे जाने पर जिसके लिये जो इष्ट होता है वह उसे ही समझ लेता है। भावार्थ–सभा में यदि कोई नाना अभिप्राय को लिये हुये वचन कहता है तो वहां सभासदों में जिसे जो अर्थ इष्ट होता है उसे ही वह ग्रहण कर लेता है।।34।। आप लोग साम और दान उपाय में रत हैं अतः उन्हें जानते हैं और महाराज अपराजित अपने योग्य उपाय को जानते हैं इसलिये उन्हें यही कथन अनादर रूप जान पड़ता है। भावार्थ–नानार्थक वचनों को लोग अपने अभिप्राय के अनुसार ग्रहण करते हैं यह सिद्धान्त है तदनुसार आप साम और दान के प्रेमी होने से उन्हें ग्रहण कर रहे हैं परन्तु महाराज के लिये यह उपाय अनादर रूप है।।35।। मैंने बुद्धिहीन होने पर भी दूत के वचनों से यह समझ लिया है कि दमितारि का अभिप्राय तिरस्कार से सहित है अर्थात् वह हम लोगों का तिरस्कार करना चाहता है। यह किन्हें आश्चर्य उत्पन्न नहीं करता ? अर्थात् सभी को आश्चर्य उत्पन्न करता है।।36।। इन गायिकाओं को युगल भेजना ही चाहिये इस

प्रकार नाम लेकर दूत को भेजते हुये उसने गायिकाओं की प्राप्ति न होने से उत्पन्न होने वाला अपना क्रोध भी प्रकट किया है। भावार्थ–दमितारि ने प्रकट किया है कि यदि गायिकाओं का युगल मेरे पास न भेजोगे तो मैं तुम्हारे ऊपर क्रुद्ध हो जाऊँगा–तुम्हें मेरे क्रोध का भाजन बनना पड़ेगा।।37।। शक्तिशाली मनुष्य इस वस्तु को प्राप्त कर संतुष्ट हो जाता है और नहीं प्राप्त कर शीघ्र ही वैर करने लगता है परन्तु शक्तिशाली मनुष्य की याचना हाथी पर सवार मनुष्य की भिक्षा के समान है। भावार्थ–जिस प्रकार हाथी पर सवार व्यक्ति को भिक्षा माँगना अच्छा नहीं लगता उसी प्रकार शक्तिशाली मनुष्य को किसी से कुछ याचना करना शोभा नहीं देता।।38।। यह गायिकाओं का युगल मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो गया है। यदि इसे स्वामी अन्यथा करते हैं–मेरे पास से हटाकर दमितारि के पास भेजते हैं तो मैं भी स्वामी रहित हूँ–अपने आपको स्वामी से रहित समझूंगा।।39।। अनन्तवीर्य क्रुद्ध होने पर भी राजा–अपराजित के अभिप्राय को जानने की इच्छा से बार–बार उसकी मुख्यस्थिति को देखता हुआ इतना कह कर ही चुप बैठ गया।।40। मन्त्री ने राजकार्य के अनुरूप जो वचन कहे तथा भाई–अनन्तवीर्य ने विषाद से भरे हुए जो वचन कहे उनसे राजा अपराजित क्षण भर के लिये अधीर हो गये।।41।। तदनन्तर राजा ने क्षणभर किसी सुनिश्चित कार्य का विचार कर इस प्रकार के वचन कहे सो ठीक ही है क्योंकि ध ीर वीर मनुष्य नीतिमार्ग का ज्ञाता होता है।।42।।

नीतितत्व न तो स्वानुभव से संगत होता है और न स्वतन्त्रता की इच्छा से। यदि आप लोगों का अनुग्रह हो तो इस संदर्भ में एक बात कहता हूँ।।43।। मैं पूर्वभव में विद्याओं का पारदर्शी और साधक था। साथ ही इस भव में भी उन विद्याओं ने मुझे बड़े प्रेम से स्वीकृत किया है।।44।। पूर्व भव में अर्जित समस्त महाविद्याएं हमारे भाई के साथ ऐसी आ मिली हैं जैसे प्रातः काल प्रतापी सूर्य के साथ किरणें आ मिलती हैं।।45।। उन विद्याओं के प्रभाव से हम दोनों रूप बदल कर गायिकाओं

का रूप धारण करेंगे और दूत के साथ जाकर विद्याधरों के राजा दमितारि को देखेंगे।।46।। अपनी विद्याओं के प्रभाव से उसकी समस्त राज्यस्थिति को जो जानने के योग्य है, जानकर वहां से वापिस आवेंगे।।47।। वहां हम लोगों को अनिष्ट होगा अथवा कोई कार्य असाध्य होगा ऐसी आशङ्का आप महानुभावों को नहीं करनी चाहिये। आप लोग हमारे राज्य की यत्न पूर्वक रक्षा करें।।48।। अतिशय बुद्धिमान् राजा इस प्रकार अपने मन में स्थित कार्य को कह कर मन्त्रियों का अभिप्राय जानने के लिये विरत हो गया–चुप हो रहा।।49।।

तदनन्तर अपराजित के समस्त राज्य का कर्णधार, अनेक शास्त्रों का ज्ञाता तथा प्रशस्त वचन बोलने वाला बहुश्रुत नाम का मन्त्री इस प्रकार के वचन कहने लगा।।50।। राजा ने जो कार्य कहा है वह उचित ही है तथा बुद्धिमानों को इष्ट है। इसके आगे का कुछ कार्य मैं इस प्रकार कहूँगा।।51।। राजा अपराजित, भाई के साथ दमितारि के पास जावें। वहाँ जाने से वह उसकी लक्ष्मी को अपने अधीन कर किसी छल के बिना वापिस आवेगा।।52।। मैंने एक तत्त्वज्ञ ज्योतिषी से यह बात पहले ही जान ली थी कि इन दोनों भाईयों के द्वारा समस्त विद्याधर राजा उन्मूलित कर दिये जावेंगे–उखाड़ दिये जावेंगे।।53।। आप लोग दमितारि के दूत का सत्कार कर उससे ऐसा कहो कि तुम्हें अनन्तवीर्य के लिये दमितारि की कोई पुत्री देना चाहिये।।54।। इससे हम उसके अभिप्राय के अन्तर–रहस्य को जान सकेंगे। क्योंकि कार्य के सन्निधान में ही देखा जाता है कि अन्तरङ्ग से शुद्ध है अथवा कुटिल है।।55।। प्रज्ञा, उत्साह, बल, उद्योग, धैर्य, शौर्य और क्षमा से सहित एक ही पुरुष बहुत शत्रुओं को जीत लेता है फिर हम दो भाई मिल कर क्या नहीं जीत सकेंगे ?।।56।। इस प्रकार उन दोनों के गुप्त कार्य को जानते हुए बहुश्रुत मन्त्री ने निश्चय कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषों को परोक्ष कार्य की सिद्धि भी प्रत्यक्ष प्रतिभासित होती है।।57।। प्रतिभाशाली उन समस्त मन्त्रियों ने संतुष्ट होकर प्रतिभारूप गुण से युक्त उस बहुश्रुत मन्त्री की बहुत स्तुति की, प्रशंसा की सो ठीक है

क्योंकि गुणी मनुष्य ईर्ष्या से रहित होते हैं।।58।। इस प्रकार मन्त्रार्थ का निर्णय करने वाले उन मन्त्रियों का क्रम से सन्मान कर राजा अपराजित मन्त्रशाला से निकल कर सभा भवन की ओर गया।।59।।

वहाँ कुछ काल तक ठहर कर तीक्ष्णबुद्धि राजा अपराजित ने एक सेवक के द्वारा शीघ्र कोषाध्यक्ष को बुलवाया।।60।। कोषाध्यक्ष शीघ्र ही आकर तथा नमस्कार कर क्या आज्ञा है ? यह कहता हुआ खड़ा हो गया। राजा ने उसे निकट बुलाया जिससे वह प्रणाम कर राजा के समीप पहुँच गया।।61।। दोनों हाथों से मुंह बन्द कर जो झुका हुआ खड़ा था ऐसे कोषाध्यक्ष के कर्णमूल में राजा ने एकान्त में कुछ कहा।।62।। स्वामी की आज्ञा को प्रणामपूर्वक स्वीकृत कर वहां से निकला और बताये हुये क्रम से ही दूतावास पहुँचा।।63।। विलेपन, रेशमीवस्त्र, माला तथा पान के द्वारा दूत का सत्कार कर उसने पिटारे के भीतर रखी हुई किसी वस्तु को सामने रख कर इस प्रकार कहा।।64।।

यह त्रिजगद्भूषण नाम का उत्तम हार है। राजा अपराजित की राज्य परम्परा से चला आ रहा है रत्नों से अद्वितीय है तथा लक्षणों से सहित है।।65।। आपके आगमन के अनुरूप यही है, यह समझकर तथा चक्रवर्ती के अनुराग से राजा ने आपके लिये भेजा है।।66।। इसे आप निःशङ्क ग्रहण कीजिये, प्रभु का प्रीतिभङ्ग मत करिये कह कर वह हार निकाल कर दूत के लिये समर्पित कर दिया।।67।। संसार के सारभूत उस आभूषण को देखकर तथा राजा की लोकोत्तर उदारता का विचार कर दूत आश्चर्य करने लगा।।68।। उसने प्रसन्न होकर तत्काल उस आभूषण को ही कण्ठ में धारण नहीं किया किन्तु राजा के अमूल्य गुण समूह को भी अपने चित्त में धारण किया।।69।। उसने उसी समय कोषाध्यक्ष के साथ जाकर प्रसन्नता के बहुत भारी भार से ही मानों दूर से झुके हुए मस्तक से राजा की पूजा की। भावार्थ–शिर झुकाकर राजा को नमस्कार किया।।70।।

राजा ने उसे अपने हाथ से आसन को निर्देश किया। 'यह आपका प्रसाद है' यह कर वह आसन पर बैठा और क्षणभर विश्राम कर कहने लगा।।71।। ऐसा कौन राजा है जो दूत को इतना सत्कार प्राप्त कराये। आपके समान क्षोभरहित तथा दानशूर राजा कौन है ? अर्थात कोई नहीं।।72।। आपने इस रीति से दमितारि पर प्रीति प्रकट की है क्योंकि पिता स्त्री के पुत्र पर जो स्नेह करता है वह स्त्री का ही प्रेम है। भावार्थ–जिस प्रकार पिता स्त्री के स्नेह के कारण उसके पुत्र पर स्नेह करता है उसी प्रकार दमितारि के स्नेह से ही आपने उसके दूत पर स्नेह प्रकट किया।।73।। मेरे आने का यह कारण जो पूछने के योग्य नहीं था, बिना पूछे ही सिद्ध हो गया। अब इतना ही कहा जाय कि मेरा जाना किस दिन होगा ?।।74।। इतना कह कर जब दूत चुप हो गया तब बहुश्रुत नाम का मन्त्री साम–शान्ति से गम्भीर तथा नीति के विस्तार से युक्त वचन कहने लगा।।75।।

सारभूत रत्न देकर जो सारहीन वस्तु को ग्रहण करना चाहते हैं ऐसे आपके नीतिज्ञ राजा की यह कौन सी अयुक्तकारिता है ? भावार्थ–आपके राजा तो बड़े नीतिज्ञ हैं फिर वे सारहीन गायिकाओं को लेकर अपनी श्रेष्ठ पुत्री को क्यों देना चाहते हैं ?।।76।। जो अदृष्ट जन पर भी ऐसी उत्कृष्ट प्रीति करते हैं यह उनकी लोकोत्तर सज्जनता ही दिखायी देती है।।77।। जिस प्रकार रत्नों के द्वारा समुद्र की निर्बाध रत्नवत्ता का अनुमान होता है उसी प्रकार आप जैसे गुणी मनुष्यों के द्वारा उनकी गुणवत्ता का अनुमान होता है।।78।। सूर्य तीक्ष्ण–अत्यन्त गर्म है, चन्द्रमा जड़ है–अत्यन्त ठण्डा है और कल्पवृक्ष स्तब्ध है–अहंकार से खड़ा है इसलिये राजा दमितारि ने उन्हें अपने तेज, शान्ति और दान के द्वारा जीत लिया है इसका क्या कहना है ?।।79।। भूति–भस्म का संयोग यद्यपि रूक्षता का कारण है तथापि उसके द्वारा सुवृत्त–गोल दर्पण जिस प्रकार स्वयं अत्यन्त प्रसन्न–स्वच्छ और निर्मल हो जाता है

उसी प्रकार भूति–सम्पत्ति का संयोग यद्यपि रूक्षता–व्यवहार सम्बन्धी कठोरता का कारण है तथापि उसके संयोग से सुवृत्त–सदाचारी राजा दमितारि स्वयं प्रसन्न–प्रसाद गुण से सहित और निर्मल हो गया है।।80।। हमारे राजवंश और दमितारि के वंश का जो सम्बन्ध पहले हुआ था उसे आज भी क्या वृद्धजन नहीं जानते हैं ?।।81।। परस्पर की आपत्ति के समय दोनों कुलों ने जो कार्य किया था उसे दोनों कुलों की चर्चा उठने पर वृद्ध जन आज भी स्मरण करते हैं।।82।। यद्यपि वह सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया है तो भी अनन्तवीर्य के लिये चक्रवर्ती की कोई कन्या देकर आप उसे फिर से स्थापित कर सकते हैं।।83।। चक्र से जो कार्य सिद्ध नहीं हुआ है वह इन दोनों भाईयों से सिद्ध होगा। कष्ट के निराकरण के लिये ये दोनों क्या आपके स्वामी की दूसरी भुजाएँ नहीं हैं ?।।84।। प्रीति से जिसका चित्त विस्तृत हो रहा है ऐसे आपको भी इन दोनों का ध्यान रखना चाहिये। यह कार्य आपके अधीन है। इतना कह कर बहुश्रुत मंत्री चुप हो गया।।85।।

तदनन्तर बहुश्रुत मन्त्री द्वारा कही हुई गम्भीर अर्थ से युक्त उस वाणी को सुनकर दूत ने हृदय में कुछ विचार किया। पश्चात् इस प्रकार कहने लगा।।86।। गुणों से सुशोभित स्वामी का आपके साथ सम्बन्ध हो यह मुझे प्रिय है इसलिये मैंने भी पहले बुद्धि द्वारा निर्धार कर इस कार्य का निश्चय किया है।।87।। बड़े पुरुषों का यह प्रयास केवल पर का प्रयोजन सिद्ध करने के लिये ही होता है। ठीक ही है समुद्र श्रेष्ठ मणियों को किसलिये धारण करता है ? भावार्थ–जिस प्रकार समुद्र दूसरों के उपयोग के लिये ही श्रेष्ठ रत्नों को धारण करता है उसी प्रकार चक्रवर्ती दमितारि भी कन्या आदि श्रेष्ठ रत्नों को दूसरों के उपयोग के लिये ही धारण करता है।।88।। अन्य मनुष्य गुणवान् हो चाहे साधारण। यदि वह प्राणों की भी इच्छा करता है तो भी चक्रवर्ती के लिये कुटुम्बी जन के समान होता है यह किंवदन्ती क्या आपने सुनी नहीं ?।।89।। ये दोनों

भाई अपने गुणों के द्वारा जब चक्रवर्ती को एकत्व प्राप्त करा देते हैं तब किसके लिये देने योग्य है ? देने वाला कौन है ? और दूसरा कौन दिलावेगा इसका भेद ही कहाँ उठता है ?।90।। मैं अन्य कार्य के लिये यहाँ आया हूँ इसलिये देने के लिये इच्छुक होने पर भी मेरा इसे चक्रवर्ती की पुत्री देना योग्य नहीं जान पड़ता। हाँ, मैं उनके पास जाकर दूँगा।91।। मेरे ऊपर उन्होंने भार रखना छोड़ा है इसलिये मेरे द्वारा किये हुए जिस किसी अयोग्य कार्य को भी वे बहुत मानते हैं फिर ऐसे योग्य कार्य का तो कहना ही क्या है ?।92।। इस प्रकार सम्बन्ध से उत्पन्न वाणी को कह कर वह शान्त हो गया। राजा अपराजित द्वारा पूछे जाने पर उसने 'मैं अमित हूँ' इस प्रकार अपना नाम बताया।93।। पर का कार्य सिद्ध कर स्वार्थ सिद्धि की बात करने वाले उस दूत की वक्तृत्वकला से सभा अत्यधिक आश्चर्य को प्राप्त हुई।94।। तदनन्तर राजा अपराजित ने उसे संगीत आदि दिखला कर कहा कि आप विश्राम कीजिये, यह कह कर यथा समय विदा किया।95।।

अथानन्तर एक समय बहुश्रुत मन्त्री ने मन्त्रणा के अनुसार अमित नामक दूत के लिये पूर्वकथित नामवाली दोनों गायिकाएँ सौंप दीं।96।। सौंपने के बाद उस प्रकरण को सूचित करने वाले यह वचन कहे कि ये गायिकाएँ अच्छी तरह देवता से सहित हैं, कामेच्छा से रहित हैं और पवित्र हैं इसलिये परम आदर पूर्वक प्रयत्न से अनुग्राह्य हैं–रखने योग्य हैं। ये निरन्तर एकान्त में रहना पसन्द करती हैं तथा अन्य राजाओं को नमस्कार नहीं करती हैं।97–98।। राजा अपराजित ने इसी विधि से इनका पालन किया है इसलिये आप भी इसी बतलायी हुई विधि से स्वीकृत करें।99।। और हमारे विषय में आपने जो स्वीकृत किया है वह चक्रवर्ती के आगे कहने के योग्य है, इस प्रकार कहकर बहुश्रुत मन्त्री ने अमित दूत को विदा किया।। दूत ने उपर्युक्त कार्य को स्वीकृत किया।।100।।

तदनन्तर फहराती हुई ध्वजाओं से सुशोभित आत्मरचित विमान के ऊपर पहले स्वयं चढ़कर जिसने उन गायिकाओं को उसी विमान पर चढ़ाया था। ऐसा विद्याधर–अमित दूत हर्षित होता हुआ आकाश में उड़ा। उस समय महलों के मध्य में स्थित सैंकड़ों स्त्रियाँ भीतर भरे हुए विस्मय रस से खुले नेत्रों के द्वारा उसे ऊपर की ओर देख रही थीं।।101।। जोरदार ध्वनि से युक्त भेरी उस समय कानों को सुख पहुँचाती हुई शब्द करने लगी, आकाश से फूलों की वृष्टि होने लगी और समस्त दिशाएं निर्मल हो गयीं। यद्यपि वह विमान गुप्त रूप से चल रहा था तथापि इन उपर्युक्त शुभ निमित्तों से वहां प्रकट हुआ। ये शुभनिमित्त ऐसे जान पड़ते थे मानों अपराजित और अनन्त वीर्य की बहुत भारी पुण्य सम्पदा ने ही पृथ्वी पर उन्हें आमन्त्रित किया हो–बुलाया हो।।102।।

इस प्रकार महाकवि असग द्वारा रचित शांतिपुराण में श्रीमान् अपराजित के मन्त्र का निश्चय करने वाला दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

तृतीय सर्गः

अथानन्तर वह क्षण भर में इतने वेग से विजयार्ध पर्वत पर पहुँच गया मानों वेग से चलने वाले मन को भी उसने पीछे कर दिया था।।1।। वेग की वायु से आकृष्ट नाना आकार वाले मेघों से सहित उसका विमान ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों चित्र विचित्र अन्य विमानों से ही सहित हो।।2।। जो विजयार्ध पर्वत ऊँचाई के कारण अपने आपको आकाश में न समाता हुआ विचार कर ही मानों समस्त दिशाओं में सब ओर अपने अङ्गों को फैला कर पृथ्वी पर स्थित था।।3।। कहीं तो वह पर्वत नील प्रभा के समूह से ऐसा जान पड़ता था मानों अन्धकार के समूह से ही व्याप्त हो और कहीं लाल-लाल प्रकाश से ऐसा सुशोभित होता था मानों दैदीप्यमान दिन के बीजों से ही युक्त हो।।4।। कहीं मूंगाओं से ऐसा व्याप्त था जिससे स्थलरूप परिणत समुद्र के समान जान पड़ता था। कहीं सैंकड़ों नागेन्द्रों-बड़े-बड़े सर्पों से युक्त था इसलिये नागलोक के समान मालूम होता था।।5।। प्रत्यन्त पर्वतों की छाया में बैठे हुऐ समस्त बड़ी अवगाहना के जीवों से जो ऊँचा उठ रहा था तथा विद्या से जिनकी आत्मा आलोकित थी ऐसे विद्याधरों को सदा धारण करता था।।6।। चारों ओर चलने वाले चमरी मृगों के सुन्दर बाल जिस पर चमर ढोर रहे थे तथा बड़े-बड़े सिंह जिस पर आसन जमाये हुये थे ऐसा वह पर्वत दूसरे चक्रवर्ती के समान सुशोभित हो रहा था। भावार्थ-जिसप्रकार चक्रवर्ती चमरों से वीजित तथा बड़े सिंहासन से युक्त होता है उसी प्रकार विजयार्ध पर्वत भी चमरीमृग के सुन्दर बालों से वीजित था तथा महासिंहों-बड़े-बड़े सिंहों के आसन से सहित था।।7।। जिसमें किन्नरों के एक गीत से दूसरा गीत सुनने के लिये यहाँ वहाँ घूमता हुआ मृग समूह दिन में तृण के अंकुरों को नहीं खाता था।।8।। जिसकी गुहाओं में

निवास करने वाले मुनिराज, अन्तस्तत्व शुद्ध आत्म तत्व के ज्ञान से जिनके मुखकमल विकसित हो रहे थे, ऐसे विद्याधरों को धर्म का उपदेश देते हैं।9।। जहाँ पद्मराग मणियों की कान्ति के समूह से दावानल की आशङ्का से हाथियों का समूह भयभीत रहता है सो ठीक ही है क्योंकि तिर्यञ्च अज्ञानी होते हैं।।10।। जहाँ संकेत के लता गृह में विद्याधरी पहले आकर प्रेमी के न आने पर कुछ उच्च स्वर से गा गा कर बेचैन होती है।।11।। जहाँ अपनी शूरता के रस से युक्त सिंह, आगे स्फटिकमणि में अपना रूप देखकर अधिक क्रुद्ध होता हुआ सामने जाता है।।12।। जिस पर्वत की शिखरों पर विचरने वाले विचित्र आकार के धारक तथा जल के अभाव से मेघ विद्याधरों के समान सुशोभित होते हैं क्योंकि मेघों के समान विद्याधर भी सानुचर थे–अनुचरों से सहित थे, विचित्र आकार के धारक थे और निर्जऽस्थिति–अज्ञान रहित स्थिति के कारण विशद–हृदय से स्वच्छ थे।।13।। जो पर्वत विविध औषधियों से युक्त था इसीलिये मानों मुक्तालय–नीरोग था (पक्ष में मोतियों से तन्मय था और अनेकशत कूट–सैंकड़ों कपटों से युक्त होने पर भी अविकृत स्थिति–विकार रहित स्थिति से सहित था (परिहार पक्ष में सैंकड़ों शिखरों से युक्त होने पर भी उसकी स्थिति में कभी कोई विकार नहीं होता था अर्थात् प्रलय आदि के न पड़ने से उसकी स्थिति सदा एक सदृश रहती थी)।।14।। जिस पर्वत पर अनेक मणियों के समूह किरणों के द्वारा मेघ रहित आकाश में भी निरन्तर इन्द्रधनुषों की परम्परा को विस्तृत करते रहते हैं।।15।। जिस पर्वत पर मरकतमणियों की कान्ति से मिश्रित स्फटिकमणि, जिनके भीतर शेवाल से युक्त जल भरा हुआ है ऐसे सरोवरों की शोभा को धारण करते हैं।।16।।

उस पर्वत को देख कर अमित विद्याधर ने कौतुक से इस प्रकार के वचन कहे। अहो गायिकाओं! इस सुन्दर विजयार्ध पर्वत को देखो।।17।। प्रातःकाल सूर्योदय होने पर यहाँ स्फटिक की दीवालों पर जब नवीन

किरणों पड़ती हैं तब वे सिन्दूर से पुती हुई के समान सुशोभित होती हैं।।18।। यह सुन्दर है, यह सुन्दर है इस तरह दूसरे–दूसरे वन को देखता हुआ विद्याधरों का युगल जिस पर्वत पर कहीं भी क्रीड़ा के लिये ठहरता नहीं है।।19।। पल्लवित अशोक लता गृह के बीच में स्थित ये दम्पत्ती ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानों अपने अनुराग के भीतर ही बैठे हों।।20।। मयूरों की केका ध्वनि के भय से जिसे सर्पों ने छोड़ दिया है ऐसा यह मार्ग में स्थित सीधा चन्दन का वृक्ष सुशोभित हो रहा है।।21।। जो सूर्य की प्रभा को रोकने के लिये ऊपर उठे हुए अन्धकार के समान जान पड़ते हैं ऐसे तमाल वृक्ष के वनों से यह पर्वत प्रत्येक लतागृहों से सुशोभित हो रहा है।।22।। जिन पर क्रीड़ा के लिये सुर और असुर घूम रहे हैं। ऐसे सुवर्णमय कटकों से यह पर्वत कहीं पर सुमेरु पर्वत की शोभा को धारण करता हुआ सा सुशोभित हो रहा हैं।।23।। विद्यारियों के चारों ओर उनकी केशरूप लताओं को कम्पित हुई यह वायु ऐसी बह रही हैं मानों उनके मुखों की सुगन्धि को ही ग्रहण करना चाहती है।।24।। जो उत्तरीय वस्त्र के अञ्चल से स्तनमण्डल को आच्छादित कर रही है, ओठों की लाल लाल कान्ति से शोभायमान है, जिसके केश बिखरे हुए हैं तथा जिसका मुख पसीने की बूँदों से व्याप्त है ऐसी यह कोई स्त्री संभोग के बाद लतागृह से बाहर निकलती हुई सुशोभित हो रही है।।25–26 जिसका जल गोता लगाने वाली विद्यारियों के स्थूलस्तनों का क्षोभ सहन करने में समर्थ है ऐसा वन के बीच में स्थित यह सरोवर स्वर्ण कमलों से सुशोभित हो रहा है।।।27।। जहां तहां भौंरे वृक्षों द्वारा फूलों की गन्ध से, हाथियों द्वारा मदजल की सुवास से और कमलवनों द्वारा अपनी सुगन्ध से लुभाये जा रहे हैं।।28।। यहाँ ये नदियाँ हाथियों के मद से मलिन तथा किनारों पर लगे रत्नों के द्वारा ताने हुए इन्द्रधनुषों से मानों सुरक्षित जल को धारण कर रही हैं।।29।। यह पर्वत कहीं रात्रि के समय चन्द्रमा की किरणों से व्याप्त चन्द्रकान्त मणियों के द्वारा छोड़े हुए

जल से शिखरों पर स्थित दावानल को बुझा रहा है।30।। सूर्य इस पर्वत के शिखरों पर क्रम–क्रम से आरूढ़ होता है अतः निश्चय से एक दिन में एक ही बार सूर्योदय दिखाई नहीं देता। भावार्थ–भिन्न–भिन्न शिखरों पर क्रम से आरूढ़ होने पर ऐसा जान पड़ता है कि यहाँ सूर्योदय कई बार हो रहा है।31।।इस प्रकार उन गायिकाओं के लिये विजयार्ध पर्वत की उत्कृष्ट सम्पदा का वर्णन करता हुआ वह अमित विद्याधर दमितारि चक्रवर्ती के शिव मन्दिर नामक नगर को प्राप्त हुआ।32।।

जिसकी परिखा और कोट अलङ्घ्य था तथा जो चार गोपुरों से सुशोभित था ऐसा वह नगर इस प्रकार जान पड़ता था मानों तीनों लोक एक ही स्थान पर एकत्रित होकर स्थित हो गये हों।33।। महलों से संकीर्ण–अच्छी तरह व्याप्त शाखानगरों की विभूति से जो नगर ऐसा सुशोभित हो रहा है मानों महलों से युक्त देवों के नगर ही आकर उसे देख रहे हों।34।। जिसके महलों की दीवालों में प्रातःकाल के सूर्य की सन्तति प्रतिबिम्बित हो रही है ऐसा यह नगर महावर के अखण्ड पटल समूह के सन्देह को धारण कर रहा है।35।। जो नगर गगन चुम्बी महलों के अग्रभाग पर लगी हुई पताकावली के संचार से ऐसा जान पड़ता है मानों कान्ति के द्वारा अपने आपको जीतने के लिये स्वर्गपुरी को ही निरन्तर बुला रहा है।36।। जो नगर प्रतिदिन बढ़ती हुई उत्कृष्ट सम्पदा से पुण्यशाली उत्तम मनुष्य के स्वर्ग को भी अतिक्रान्त करता रहता है।37।। जिस नगर में निरन्तर मेघ महलों के अग्रभाग तक घूमते रहते हैं जिससे ऐसे जान पड़ते हैं मानों उसकी रत्नमयी दीवालों में प्रतिबिम्बित अपने स्वरूप को देखने के लिये ही घूमते रहते हो।38।। जिस नगर के संगीत का शब्द मानों उच्चस्वर से यही घोषणा करता रहता है कि बहुत समृद्ध–संपत्तिशाली नगर यही है दूसरा नहीं।39।। जहाँ मणिमयभूमियों पर चलने वाली स्त्रियों के मुख से ही अपने प्रतिबिम्बों से उपहार के कमल होते हैं।40।।जहाँ रात्रि में ताराओं के प्रतिबिम्ब से

युक्त स्फटिक के आंगनों की भूमियाँ ऐसी सुशोभित होती हैं मानों चलते फिरते फलों से ही व्याप्त हो रही हों।।41।।

प्रसन्नचित्त का धारक वह दत्त उस नगर को देख कर प्रसन्न हो गया सो ठीक ही है क्योंकि जननी और जन्मभूमि को देखकर कौन सुखी नहीं होता ?।।42।। तदनन्तर नगर को देखने के लिये उत्कण्ठित गायिकाओं से अमित ने इस प्रकार के वचन कहे। मानों वह यह कह रहा था कि हम अभिप्राय–हृदय की चेष्टा को जानने वाले हैं।।43।। यह नगर इन्द्र के दूसरे नगर के समान सुशोभित हो रहा है क्योंकि जिस प्रकार इन्द्र का नगर समस्त सम्पदाओं का स्थान है उसी प्रकार यह नगर भी समस्त संपदाओं का स्थान है और जिस प्रकार इन्द्र का नगर अनूनविबुधाकीर्ण–बड़े बड़े देवों से व्याप्त है उसी प्रकार यह नगर भी बड़े बड़े विद्वानों से व्याप्त है।।44।। यह नगर दक्षिण श्रेणी में स्थित होकर भी निरन्तर अपने अपरिमित प्रताप से उत्तर श्रेणी को आक्रान्त कर प्रवर्त रहा है।।45।। उस नगर की हीरानिर्मित कपोत पालियों के इन्द्रधनुषों की शोभा को ग्रहण करने की इच्छा से ही मानों ये मेघ महलों के शिखरों को नहीं छोड़ते हैं।।46।। महलों की छतों पर बैठा तथा अपने आभूषणों की प्रभा में डूबा यह स्त्रियों का समूह ऐसा सुशोभित हो रहा है। मानों तालाब के बीच में ही स्थित हो।।47।। निवासी जनों के द्वारा जिनकी समस्त वस्तुएँ अच्छी तरह खरीद ली जाती है। ऐसे व्यापारी मनुष्यों के द्वारा विनोद के लिये यहाँ दुकानें फैलायी जाती हैं–बढ़ायी जाती हैं।।48।।

उपहार में चढ़ाये हुए समस्त शिरषि पुष्पों के समूह को पाकर हंसी शेवाल की शङ्का से मुँह खोल रही है।।49।। नाना प्रकार के मनुष्यों से सुशोभित यह राजकुल का द्वार ऐसा सुशोभित हो रहा है मानों देखने के लिये किसी के द्वारा एकत्रित किया हुआ त्रैलोक्य–तीनलोकों का समूह ही हो।।50।। बाह्य भूमि में स्थित यह राजाओं का समूह दिव्यवन–सुन्दर

वन के समान जान पड़ता है क्योंकि जिस प्रकार दिव्यवन नाना पत्रों–रङ्गविरङ्गे पत्तों से सहित होता है उसी प्रकार राजाओं का समूह भी नानापत्रों–हाथी घोड़ा आदि अनेक वाहनों से सहित है और दिव्यवन जिस प्रकार दैदीप्यमान रत्नों के आभूषणों से सुशोभित होता है उसी प्रकार राजाओं का समूह भी उनसे सुशोभित है।।51।। रुनझुन शब्द करने वाली मेखला और नूपुरों से सहित ये वाराङ्गनाएं जहाँ तहाँ ऐसी घूम रही हैं मानों कामदेव की प्रत्यञ्चा के शब्द से सहित हों।।52।। अत्यधिक प्रियवचन बोलता हुआ प्रवेश करने का इच्छुक जन द्वारपालों के द्वारा रोक दिया गया है अतः कुछ पश्चात्ताप करके वापिस लौट रहा है।।53।। ये राजा के प्रिय हाथी, अन्तर्गत मद के कारण नेत्र युगल को कुछ कुछ बन्द कर निःशङ्करूप से प्रवेश कर रहे हैं।।54।। जो समस्त जगत् को धोखा देते हैं तथा प्रच्छन्नरूप से अन्याय करते हैं ऐसे ये अर्थाधिकारी पिशाचों के समान गुप्त रूप से भीतर प्रवेश कर रहे हैं।।55।। पीछे–पीछे चलने वाले शिष्यों के साथ जो शास्त्र की चर्चा कर रहे हैं, जो आत्मज्ञान से भोगों को तृण भी नहीं समझते हैं, जो सरस्वती के द्वारा अनुरागवश सदा सर्वाङ्ग से आलिङ्गित रहते हैं तथा शिष्ट परिकर अथवा वेषभूषा से सहित हैं ऐसे ये विद्वान् स्वतन्त्रता पूर्वक चल रहे हैं।।56–57।। अनेक युद्धों से प्राप्त विजय से उत्पन्न एक यश ही जिनका धन है तथा जो बड़े–बड़े शत्रुओं से भी शरणागत लोगों की रक्षा करते हैं ऐसे अन्य वीर सिंहों के समान मदोन्मत्त गजघटा–हस्ति समूह के विदारण करने में समर्थ पराक्रम से सुशोभित हो रहे हैं।।58–59।। जो दूसरों से प्राप्त सन्मान मात्र के द्वारा अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं, जो दीन अनाथ तथा विपत्तिग्रस्त लोगों पर आपत्तियों के समय अत्यन्त स्नेह प्रदर्शित करते हैं तथा जो राजा के अत्यन्त दुर्लभ आह्वान और अपने हाथ से दी हुई माला से संतुष्ट हैं ऐसे ये कितने ही वीर भीतर प्रवेश कर रहे हैं और बाहर निकल रहे हैं।।60–61।। जो चिरकाल

तक बन्धन में रखने के बाद छोड़े गये हैं तथा जिनकी सज्जनता प्रख्यात है ऐसे राजा लोग फिर से अपना पुर पाने की इच्छा से राजद्वार की उपासना कर रहे हैं।।62।। जो अनेक देशों में उत्पन्न हैं, कुलीन हैं, विनीत हैं, अच्छे लक्षणों से सहित हैं और उत्तम तेज से युक्त हैं ऐसे ये घोड़े राजकुमारों के समान सुशोभित हो रहे हैं।।63।। पहरे पर खड़े हुए अनेक मदोन्मत्त हाथियों से भरी हुई यह कक्षा अनेक मेघों से व्याप्त आकाश के समान सुशोभित हो रही है।।64।। वन्दीजन जिनके नाम की स्तुति कर रहे हैं, जो उत्कृष्ट शौर्य से सुशोभित हैं, जिन्होंने जीते हुए अनेक संग्राम में बहुत भारी लक्ष्मी प्राप्त की है तथा जो सब ओर धारण किये हुए अपने यश के समान निर्मल छत्रों से युक्त हैं ऐसे ये विद्याधर राजा अवसर की प्रतीक्षा करते हुए बाहर खड़े हैं।।65–66।। यह राजद्वार कहीं पर वन के समान सुशोभित हो रहा है क्योंकि जिस प्रकार वन अनेक पशताकीर्ण सैंकड़ों हाथियों से व्याप्त होता है उसी प्रकार राजद्वार भी पहरे पर खड़े हुये सैंकड़ों हाथियों से व्याप्त है। जिस प्रकार वन वेत्रलताओं से सहित धर–पर्वतों से दुर्ग–दुर्गम्य होता है उसी प्रकार राज द्वार भी वेत्रलता–छड़ियों को धारण करने वाले द्वारपालों से दुर्गम्य है। जिस प्रकार वन विक्रान्त प्रचण्ड पराक्रम तथा सुन्दर केशर–गर्दन के बालों से युक्त हरि–सिंहों से सहित होता है उसी प्रकार राज द्वार भी विक्रान्त विक्रम–सुन्दर चलने वाले तथा गर्दन के सुन्दर बालों से युक्त हरि–घोड़ों से सहित है। जिस प्रकार वन कस्तूरी की उत्कट–बहुत भारी गन्ध से आकृष्ट भ्रमरों से युक्त होता है उसी प्रकार राज द्वार भी युक्त है और जिस प्रकार वन सुविप्रवरसेवित–अच्छे अच्छे श्रेष्ठ पक्षियों से सेवित होता है उसी प्रकार राज द्वार भी सुविप्रवरसेवित–उत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मणों से सेवित है।।67–68।। इस प्रकार उन गायिकाओं से राज भवन की विभूति का वर्णन कर दूत ने विमान को आकाश से सभाङ्गण से उतारा।।69।।

तदनन्तर संभ्रम पूर्वक नम्रीभूत होकर आया हुआ द्वारपाल जिसके आगे चल रहा था ऐसे अमित ने चक्रवर्ती को दूर से ही यथा योग्य प्रणाम किया।।70।। 'यहाँ बैठो' इस प्रकार राजा के द्वारा अपने हाथ से बताये हुये आसन पर प्रणाम पूर्वक निराकुलता से बैठा। सभासदों ने उससे कुशल समाचार पूछा।।71।। तदनन्तर वहाँ बैठकर अमित ने जैसा कुछ हुआ तदनुसार अवसर आने पर क्रम से राजा के लिये गायिकाओं के आगमन की सूचना की।।72।। राजा ने निकटवर्ती मन्त्रियों के मुख देख कर अमित से कहा कि उन्हें शीघ्र ही प्रविष्ट कराओ, देखूंगा।।73।। अमित ने स्वयमेव जाकर तथा प्रतीहारों के द्वारा दर्शक सभा को दूर कर यथाक्रम से उन गायिकाओं को प्रविष्ट कराया।।74।।

तदनन्तर जो तेजस्वियों का स्वामी था, प्रताप से सुशोभित था, अपने राजस्व (टैक्स) से (पक्ष में किरणों से) जिसने दिशाओं के समूह को व्याप्त कर लिया था, और इस कारण जो दूसरे सूर्य के समान जान पड़ता था।।75।। जो सभा के चारों ओर फैलने वाले रत्नमय आभूषणों के तेज से ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पत्ति रहित विभूति के लिये दिग्दाह को रच रहा हो।।76।। जो सुगन्धित मालती के फूलों की माला के बहाने तीनों जगत् में भ्रमण करने से थकी हुई अपनी कीर्ति को हर्ष पूर्वक सिर पर धारण कर रहा था।।77।। जो कर्णाभरण सम्बन्धी मोतियों की किरणों से व्याप्त मुख की शोभा से ऐसा जान पड़ता था मानो क्षय और वृद्धि से युक्त चन्द्रमा की सदा हँसी ही कर रहा हो।।78।। जो सुधीर, स्निग्ध तथा दूध के समान आभावाले दृष्टिपातों से सब ओर चुपचाप अपने अन्तःकरण की प्रसन्नता को कह रहा था।।79।। जो बाजूबन्द में लगे हुए पद्मरागमणि की किरणों से व्याप्त उन भुजाओं को धारण कर रहा था जो सदा निकलती हुई प्रताप रूप अग्नि की ज्वालाओं से ही मानों पल्लवित–लाल लाल पत्तों से युक्त हो रही थी।।80।। जो हार के बहाने ऐसा जान पड़ता था मानों विस्मय से

कण्ठ का आलिङ्गन कर मुख की कान्ति को देखने के इच्छुक चन्द्रमा के द्वारा सेवित हो रहा हो।।81।। मेरू पर्वत के शिखर के समान विशाल तथा लक्ष्मी के निवासभूत वक्षःस्थल से जो ऐसा जान पड़ता था मानों अपने चित्त की बहुत भारी पृथुकता को ही कह रहा हो।।82।। नाना प्रकार के शस्त्रों के अभ्यास सम्बन्धी श्रम से जिसका पेट कृश था तथा जिसका अधोवस्त्र अमूल्य मेखला करधनी से सहित था।।83।। गोल, सान्द्र, विशाल और परिपुष्ट दोनों जांघों की शोभा से जो ऐरावत हाथी की सूंड की आकृति को तिरस्कृत कर स्थित था।।84।। जो सब ओर से घुटनों के उस गूढ़ युगल से शोभायमान हो रहा था जिसका कि सन्धिबन्ध अच्छी तरह श्लेष्ट था जो मन्त्रि के समान सुशोभित तथा गुप्त था।।85।। जो सुवृत्त–गोल (पक्ष में अच्छे छन्दों से सहित), सामुद्रिक शास्त्र से प्रदर्शित उत्तम लक्षणों से युक्त (पक्ष में लक्षणावृत्ति से सहित), उत्कृष्ट, सत्पुरुषों के मन को हरण करने वाले उत्तम काव्य के समान किसी सर्वश्रेष्ठ जङ्घा युगल को धारण कर रहा था।।86।। जो सिंहासन से कुछ बाहर की ओर लटके हुऐ चाम चरण की लाल–लाल किरणों के समूह द्वारा स्फटिकमणिनिर्मित पादपीठ–पैर रखने की चौकी को मानो लाल–लाल कर रहा था।।87।। जो सरोवर के समान मत्स्य, चक्र और शङ्ख अथवा कमल से सहित (पक्ष में सामुद्रिक शास्त्र में वर्णित मत्स्यादि के चिन्हों से सहित) अपूर्व दाहिने पैर को ऊपर कर लीला पूर्वक बैठा हुआ था।।88।। जो सब ओर वाराङ्गनाओं के द्वारा चलाये हुए चमरों से सेवित हो रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानों दिन में भी शरद ऋतु की चाँदनी की तरङ्गों से सेवित हो रहा हो।।89।। जो प्रस्ताव–अवसर के अनुरूप हँसी में कहे हुए वन्दी के किसी वचन को सुनकर उसकी ओर मुस्करा रहा था।।90।। कहे अनुसार कृतकृत्य सेवकों के लिये पारितोषिक दिलाओ..... इस प्रकार जो निकटवर्ती मन्त्री आदि प्रमुख वर्ग को आदेश दे रहा था।।91।। जो क्रम

से सभा की वेदी पर बैठे हुए विद्याधर राजाओं को अन्तरङ्ग से शुद्ध कटाक्षों के द्वारा यहाँ वहाँ अनुगृहीत कर रहा था।92।। जो इन तथा इस प्रकार की अन्य लीलाओं से सहित था ऐसे राजा दमितारि को उन गायिकाओं ने सभा के बीच देखा।93।।

तदनन्तर हे देव! इधर देखिये, इस प्रकार पहले कह कर अमित ने जिनकी सूचना दी थी ऐसी गायिकाओं को राजा ने आश्चर्य पूर्वक देखा।94।। राजा दमितारि यद्यपि स्वभाव से धीर था तो भी उन गायिकाओं को देखने से उत्पन्न आश्चर्य से आकुलित चित्त के द्वारा तत्क्षण इस प्रकार का विचार करने लगा।95।। समीचीन तथा विशिष्ट आकार को धारण करने वाली ये गायिकाएँ सचमुच ही देवाधिष्ठित हैं। किसी कारण क्या नाग कन्याएँ इस रूप हुई हैं।96।। इस प्रकार श्रेष्ठ सभा के साथ चिरकाल तक उन गायिकाओं को देख कर राजा ने शीघ्र ही आसन आदि के द्वारा उनका सत्कार कराया।97।। राजा ने स्वयं उनसे संभाषण कर अमित को आदेश दिया कि इन्हें यथा योग्य रीति से कनक श्री कन्या के लिये सौंप दो।98।। इस प्रकार राजा की आज्ञा तथा उचित सन्मान प्राप्त कर जो संतुष्ट था ऐसे अमित ने उन गायिकाओं के अग्रसर होकर तथा समुचित रीति से कन्या कनक श्री के अन्तःपुर जाकर उन गायिकाओं से स्नेह पूर्वक कहा कि यहाँ आप लोग सदा सुख से रहिये। इस प्रकार कह कर प्रत्यक्ष शरीर को धारण करने वाली लक्ष्मी के समान कन्या के लिये वे दोनों गायिकाएँ सौंप दी।99।। उन गायिकाओं को देखकर तीक्ष्णबुद्धि वाली कनक श्री ने अमित को शीघ्र ही विदा किया, गायिकाओं से संभाषण किया, और उन्हें अपने अनुरूप सत्कार प्राप्त कराया। इस प्रकार स्वाभाविक विनय से अलंकृत शोभारूप संपदा को धारण करती हुई राजपुत्री सुशोभित हो रही थी सो ठीक ही है क्योंकि विनय सहित रूप तीनों लोकों में अद्भुत होता है।।100।।

इस प्रकार असग कवि विरचित श्री शान्तिपुराण में दमितारि के दर्शन का वर्णन करने वाला तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।3।।

चतुर्थ सर्गः

अथानन्तर अन्य समय भय सहित किसी कञ्चुकी ने महासभा के मध्य में स्थित चक्रवर्ती दमितारि को नमस्कार कर इस प्रकार निवेदन किया।।1।। हे देव! सावधानी से इसे सुन मुझे क्षमा कीजिये। कन्या के अन्तःपुर में जो कुछ हुआ है वह इस प्रकार कहा जाता।।2।। गायिका का बहाना रख उद्दण्ड अपराजित ने यहाँ आपके पास आकर तथा आपकी पुत्री को उत्कण्ठित कर भाई के अधीन कर दिया है।।3।। महाधनुष से सुशोभित वह आज ही प्रातः आपकी पुत्री और भाई अपराजित को विमान में चढ़ा कर ले गया है।।4।। वह कुछ दूर जाकर तथा पीछे दौड़ते हुए हम लोगों को देख कर रुका और हँसकर निर्भय हुआ इस प्रकार कहने लगा।।5।। व्यर्थ आये हुए तथा युद्ध कार्य में असमर्थ आप लोगों से क्या प्रयोजन है ? क्या अपराजित शस्त्र रहित वृद्धजनों को मारेगा ?।।6।। तुम लोग इस स्थान से लौट कर जाओ। मैं नम्र हूँ, मेरे वचन से यह समाचार चक्रवर्ती से कहो।।7।। युद्ध करने के लिये ही मेरे भाई द्वारा यह कन्या हरी गयी है। तिर्यञ्चों के समान सत्पुरुषों का युद्ध क्या अकारण ही होता है ?।।8।। इस पर्वत से आगे मैं एक पद भी नहीं जाऊँगा ऐसी प्रतिज्ञा कर युद्ध की इच्छा करता हुआ खड़ा है।।9।। इस प्रकार भय से भीतर कुछ–कुछ स्खलित होने वाली वाणी के द्वारा अस्पष्ट रूप से उसका समाचार कह कर वह वृद्ध कञ्चुकी शान्त हो गया।।10।।

तदनन्तर राजा दमितारि कञ्चुकी के मुख से शत्रु के रण सम्बन्धी उद्योग और उसके द्वारा किये हुये पराभव को सुन कर हृदय में कुपित हुआ।।11।। तत्पश्चात् इस अवसर से यद्यपि क्रोध उत्पन्न हुआ था तथापि धैर्य से दबा कर वीर सभासदों को चारों ओर देखते हुए दमितारि ने इस प्रकार कहा।।12।।

जो कोई साधारण मनुष्य है वह भी ऐसे व्यक्ति के पराभव को स्वीकृत नहीं करता है इसलिए इस संदर्भ में हम लोगों का जो कर्त्तव्य है उसे आप एक साथ कहिये।॥3॥ अथवा कहने से क्या ? मैं अकेला ही जाकर उस अभिमानी को मार डालूँगा। किसी से यदि ऐसा वाक्य मैंने सुना हो तो कहो।॥4॥ अनादर पूर्वक अनेक हाथियों को जीतने वाले झुण्ड का नायक गजराज जब सिंह द्वारा आक्रमण कर मार डाला जाता है तब बालक हाथी किसके पीछे जायेगा ?।॥5॥ अथवा किसी शिकारी के द्वारा भी दूर से भाई सहित उस अहंकारी को उस प्रकार विदीर्ण कर दूँगा जिस प्रकार कि खदिर वृक्ष को विदीर्ण कर दिया जाता है।॥6॥ क्रोध से इस प्रकार के शब्द कह कर जब दमितारि चुप हो गया तब सभा प्रलय कालीन समुद्र की वेला के समान क्षुभित हो उठी।॥7॥

तदनन्तर जिसके नेत्र लाल–लाल हो रहे थे, अत्यन्त कुपित था और ओंठ को डस रहा था ऐसा कोई वीर दाहिने हाथ से अपने ही बाएं कन्धे को जोर–जोर से ताड़ित करने लगा।॥8॥ एक वीर अभी हाल मारे हुए शस्त्र के रुधिर से लाल गदा को देख क्रोध वश स्वामी का मुख बार–बार देख रहा था।॥9॥ ऊपर उभारी निर्मल तलवार की विस्तृत किरणों से जो श्यामवर्ण हो रहा था ऐसा अन्य वीर भीतर जलने वाले क्रोध रूपी अग्नि के धूम से ही मानों मटमैला हो गया था।।20॥ किसी एक वीर का वक्षः स्थल हार के मध्य से स्थित पद्मराग मणि की किरणों से लाल हो रहा था। इसलिये क्रोध की लालिमा उत्पन्न होने पर भी प्रकट नहीं हो रही थी।।21॥ कोई एक वीर ऐसा हँस रहा था मानों कर्णाभरण के रूप में धारण किये हुए अशोक पल्लवों के छल से रक्त लाल वर्ण (पक्ष में अनुराग से युक्त) क्रोध रूपी स्त्री ने ही कानों के पास आकर उससे कुछ कहा हो।।22॥ जिसका ललाट पसीना से युक्त था, नेत्र लाल थे और ओठ रूपी पल्लव हिल रहा था ऐसा कोई वीर हाथ

फटकारता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों क्रोध का अभिनय ही कर रहा हो।।23।। अपने आभूषणों की प्रभा के समूह से जो कठिनाई पूर्वक देखा जाता था तथा जो भयंकर क्रोधाग्नि के समान जान पड़ता था ऐसा कोई वीर समीप में स्थित वीरों को चलाता हुआ चल रहा था।।24।। इस प्रकार तलवार को ऊपर उठाये हुये क्रुद्ध विद्याधरों से व्याप्त वह दैदीप्यमान ग्रहों के समूह से व्याप्त आकाश के समान भयंकर हो गयी थी।।25।।

तदनन्तर जो सिंहासन के निकटवर्ती आसन पर बैठा था ऐसे महामनस्वी महाबल ने शत्रुओं के बहुत भारी शस्त्राघातों से चिह्नित वक्षःस्थल को ऊँचा उठा कर क्षोभ से आसन छोड़ने वाले सब लोगों से कहा कि आप बैठिये। पश्चात् राजा दमितारि के सन्मुख मुड़ कर उसने इस प्रकार कहा।।26-27।। जब भृत्यों की दाहिनी भुजा उभारी हुई तलवार की किरणों से कन्धे को व्याप्त कर रही है तब आप व्यर्थ ही क्रोध से क्यों झूम रहे हैं ? भावार्थ-हम सब भृत्यों के रहते हुए आपको कुपित होने की आवश्यकता नहीं है।।28।। जगत में छाया हुआ जो क्षत्रिय का तेज अन्य लोगों की रक्षा करने में समर्थ है उसका क्या स्वप्न में भी पराभव से सम्बन्ध हो सकता है ?।।29।। दमितारि की पुत्री को हर कर जाता हुआ एक मनुष्य लौट कर युद्ध के लिये उसी को बुलाता है.....यह अश्रुत पूर्व बात सुनी है।।30।। यदि आपकी क्षमा है तो दूसरों के उपरोध से आप भले ही क्षमा कर दें परन्तु सरलता से रहित और पराभव से दुःखी हम लोग क्षमा करने के लिये समर्थ नहीं है।।31।। इस प्रकार क्रुद्ध महाबल की वाणी सुनकर उठने के इच्छुक चक्रवर्ती को रोकता हुआ सुमति मन्त्री ऐसा कहने लगा।।32।।

इस अवसर पर प्राणों की बाजी लगाने वाले शस्त्र जीवी पुरुषों को यद्यपि स्वामी के सन्मान के अनुरूप यही कहना उचित है।।33।।

तथापि बुद्धिमान् मनुष्यों को यहाँ नय का विचार करना चाहिये क्योंकि कौन विचारवान् मनुष्य अपने आपको ग्रह के समान क्रोध के लिये समर्पित करता है ? अर्थात् कोई नहीं। भावार्थ–जिस प्रकार कोई अपने आपको पिशाच के लिये नहीं सौंपता है उसी प्रकार विचारवान् जीव अपने आपको क्रोध के लिये नहीं सौंपता है।।34।। जिसने समस्त विद्याधर राजाओं के शिखामणि को अपना पीठ बनाया है ऐसा चक्रवर्ती नरकीटों–भूमिगोचरी (क्षुद्र–मनुष्यों से क्रोध करता है, इस निन्दा से क्यों नहीं डरता ?।।35।। अपने हाथ से मारे हुए अनेक हाथियों के मद जल से जिसकी अयाल (ग्रीवा के बाल) गीली हो रही है ऐसा सिंह कुपित होने पर भी क्या शृगाल के बच्चे को मारता है ?।।36।। प्रभु का आभूषण क्षमा है, स्त्री का आभूषण लज्जा है, शस्त्रोपजीवी–सैनिक का आभूषण शूर वीरता है, और तपस्वी का आभूषण वैराग्य है ऐसा ज्ञानी जन कहते हैं।।37।। राजा भूमि के द्वारा उस प्रकार क्षमावान् नहीं होता जिस प्रकार शान्ति के द्वारा क्षमावान् होता है। निश्चय से क्षमा ही तप का मूल है और सम्पत्तियों की जननी है। भावार्थ–क्षमा नाम पृथ्वी का भी है इसलिये क्षमा–पृथ्वी से युक्त होने के कारण राजा क्षमावान् नहीं होता उससे तो पृथ्वीमान होता है परन्तु शान्ति या क्षमा के द्वारा सच्चा क्षमावान् होता है।।38।। अच्छी तरह पका हुआ अन्न, विचार कर कहा हुआ शब्द, विचार कर किया हुआ कार्य और साधुजनों की मित्रता दीर्घकाल निकल जाने पर भी विकार को प्राप्त नहीं होता।।39।। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में नदियों के मलिन जल ग्रहण करने के योग्य नहीं होते उसी प्रकार बालक, स्त्री और भयभीत मनुष्य के वचन बुद्धिमान् मनुष्यों के द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं होते हैं।।40।। तुम्हें कोई बुद्धिमान् दूत उसके पास भेजना चाहिये। तदनन्तर उस दूत से हम उसकी चेष्टा को जानेंगे।।41।। जैसे उसने नीति पूर्वक कार्य का प्रारम्भ किया है वैसे ही आप भी सन्धि और विग्रह में से किसी एक को जिसका कि अवसर

प्राप्त हो तथा जो निर्दोष हो, करोगे।।42।। यद्यपि पुरुषों का फल कर्म के अधीन है और उनकी बुद्धि भी कर्मानुसारिणी होती है तथापि बुद्धिमान् पुरुष अच्छी तरह विचार करके ही कार्य करते हैं।।43।।

उत्तम बुद्धि से युक्त सुमति मन्त्री जब इस प्रकार की वाणी कह कर चुप हो गया तब राजा दमितारि ने राजा अपराजित के पास प्रीतिवर्धन नाम का दूत भेजा।।44।। तदनन्तर दूत ने उस स्थान पर जाकर अपराजित को देखा। उस समय अपराजित आने वाली शत्रु सेना की प्रिया के समान प्रतीक्षा कर रहा था।।45।। विस्तारित आकाश युद्ध के व्यापार में जिसका चित्त लग रहा था ऐसे अपराजित को प्रणाम कर दूत ने उससे कहा कि इधर चित्त लगाइये।।46।। आपके समान प्रसन्न और गम्भीर दूसरा नहीं दिखायी देता। ऐसा जान पड़ता है जैसे आपने समुद्र को अपने भीतर धारण कर रक्खा हो अथवा मानों आप दूसरा पूर्णचन्द्र ही हैं। भावार्थ–आप समुद्र के समान गंभीर हैं और पूर्णचन्द्रमा के समान प्रसन्न हैं।।47।। लोक में आपके ही गुण और दोष में अनन्तपन देखा जाता है। गुणों का अनन्तपन तो इसलिये है कि वे अगण्य हैं–गिने नहीं जा सकते हैं और दोषों का अनन्तपन इसलिये है कि उनका अभाव है।।48।। आपका यश प्रत्यक्ष है परन्तु अप्रमाण है–प्रमाण नहीं है (पक्ष में नाप तौल रूप प्रमाण से रहित है) स्थास्नुस्थिर है परन्तु तीनों लोकों में भ्रमण कर रहा है (परिहार पक्ष में स्थायी होकर तीनों लोकों में व्याप्त है) इस प्रकार अविरुद्ध–विरोध रहित आप से विरुद्ध यश कैसे उत्पन्न हो गया ?।।49।। शास्त्रज्ञान, गम्भीरता, शूर वीरता और उदारता से सहित तथा सज्जनों के साथ मित्रता करने में तत्पर आपके समान दूसरा दिखायी नहीं देता।।50।। आपके कुल के प्राचीन पुरुष न्यायवन्त तथा महान थे। यद्यपि आप भी उनके मार्ग पर चल रहे हैं फिर व्यर्थ ही ऐसे चञ्चल क्यों होते हैं ?।।51।। जिसके दोनों वंश विशुद्ध हैं तथा जिसकी आकृति असाधारण है ऐसे आपको इस

कन्यारत्न रूप परधन को हरना योग्य नहीं है।।52।। आप किसी कारण यहाँ गुप्त रूप से आये हैं इसलिये नीति से सुशोभित आपका गुप्त रूप से चला जाना ही श्रेयस्कर है।।53।। आपमें भी जो यह दुराचार आया है वह भाई की चपलता से आया है क्योंकि प्राणियों के गुण और दोष संसर्ग से ही होते हैं।।54।। कञ्चुकी के द्वारा कहे हुए आपके व्यवसाय को सुन कर राजा दमितारि एक कन्या मेरे नहीं हुई' यह कर लज्जा से अधोमुख हो गया।।55।। शत्रुओं को संतप्त करने वाला किंकर्तव्यमूढ़ होकर भीतर ही भीतर दुःखी हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि दुराचारिणी कन्या माता–पिता के खेद के लिये होती है।।56।। कन्याहरण को सुनकर जो क्रुद्ध हो रहे थे, दैदीप्यमान हो रहे थे, शस्त्र ऊपर उठा रहे थे, तथा आसनों से उठ कर खड़े होना चाहते थे ऐसे सब विद्याधर राजाओं को उसने रोका है–मना किया है।।57।। उस महात्मा की सेवा कर अपनी पद मर्यादा की रक्षा करते हुए राजा लोग वृद्धि को प्राप्त होते हैं क्योंकि सत् पुरुषों की सेवा वैसी नहीं होती।।58।। लक्ष्मी से परिपूर्ण होने पर जिसे अहङ्कार नहीं हैं, विद्वान् होने पर जो मात्सर्य से रहित है, और समर्थ होने पर भी जो मर्यादा से सहित है ऐसा दूसरा प्रभु कौन है ?।।59।। उस महात्मा की विराधना कर–उससे द्वेष कर तुम बुद्धि से दरिद्र मत होओ। क्योंकि उन्मत्त हाथी भी सिंह से वैर नहीं करता।।60।। पहले अच्छी तरह पढ़े हुए शास्त्र का स्मरण कर विनयवान् होओ। क्योंकि विनय सत्पुरुषों का एक उत्तम तथा बहुत भारी आभूषण है।।61।। जिस प्रकार वृक्ष का सुगन्धित फूल कहीं भी उत्पन्न होकर और कहीं से भी आकर लोगों के मस्तक पर अपना स्थान बना लेता है उसी प्रकार गुणवान् मनुष्य कहीं भी उत्पन्न होकर तथा कहीं से भी आकर लोगों के मस्तक पर अपना पैर रखता है अथवा स्थान बना लेता है।।62।। पत्थर पर्वत के अग्रभाग पर कठिनाई से चढ़ाया जाता है परन्तु गिरा सुख से दिया जाता है। उसी के समान मनुष्यों के गुणों की उत्पत्ति कठिनाई से

होती है परन्तु उनका अभाव सुख से हो जाता है।।63।। राजा दमितारि तुम्हारे पिता के तुल्य हैं अतः उनसे तुम्हें कुछ भी शंका नहीं करना चाहिये। प्रमाद से अपराध करने वाले तुम्हारे ऊपर राजा ने क्षमा कर दिया है।।64।। अब आओ अपने चक्रवर्ती के दर्शन कर उन्हें नमस्कार करो तथा कन्या को छोड़ो। मेरा यह वचन तुम्हारे लिये हितकारी है किन्तु तुम्हारी चेष्टा अहितकारी है।।65।। सज्जन, शत्रु को भी हित के लिये ही अत्यधिक प्रवृत्ति करता है सो ठीक ही है क्योंकि क्या चन्द्रमा ग्रसने वाले राहु को अमृत से संतृप्त नहीं करता ?।।66।। इस प्रकार प्रीतिवर्धन, अपराजित के पास आकर तथा नय की सन्तति से परिपूर्ण गम्भीर वचनों को स्पष्ट रूप से कह कर चुप हो गया।।67।।

तदनन्तर जिसके नेत्र क्रोध से लाल हो रहे थे तथा बोलने की इच्छा से जिसका ओठ काँप रहा था ऐसे वीर छोटे भाई अनन्त वीर्य को दृष्टि से ही रोक कर अपराजित ने इस प्रकार के वचन ग्रहण किये–इस प्रकार बोलना शुरू किया।।68।। यथाक्रम से चारों उपायों को संकलित कर इस प्रकार के वचन कहने के लिये दूसरा कौन समर्थ है ?।।69।। मेरा उद्योग यद्यपि स्पष्ट है तथापि तुमने उसे क्यों नहीं देखा ? इसी प्रकार राजा दमितारि की सभा के मध्य में भी कञ्चुकी ने मेरा उद्योग स्पष्ट कहा था, फिर उसने उसे क्यों नहीं ग्रहण किया ?।।70।। तुम कोई बीच के दलाल हो जो बड़े लोगों को टिकने नहीं देते। इसीलिये अपनी बुद्धि से कुछ इस प्रकार की अटपटी बात कह रहे हो।।71।। शूरवीर तथा अपने आप को राजपुत्र मानने वाला ऐसा कौन विचारवान् मनुष्य होगा जो युद्ध के लिये चलने वाले शत्रु के लिये दूत भेजता हो।।72।। आपके इस आगमन से मेरा भी मन लज्जित हो रहा है। क्या विद्याधरों के देश में ऐसी ही परिभाषा है।।73।। साम का प्रयोग ऐसे शत्रु के साथ करना चाहिये जिसे स्तुति प्रिय हो तथा दान का प्रयोग उसके साथ करना चाहिये जो स्वभाव का लोभी हो, दरिद्र हो अथवा किसी

संकट में हो।।74।। नीतिशाली मनुष्य को भेद का प्रयोग उसमें करना चाहिये जिसकी प्रजा अथवा मन्त्री आदि वर्ग निरन्तर क्रुद्ध, भयभीत अथवा अपमानित रहते हों।।75।। और दण्ड का विषय वह कहा गया है जो दैव और पौरुष से रहित हो। उपायों के ज्ञाता पूर्व पुरुषों ने उपायों के विषय इस प्रकार कहे हैं।।76।। इनमें से मैं एक कोई भी नहीं हूँ फिर तुमने व्यर्थ ही मुझ पर ये उपाय क्यों रक्खें ? क्या आप नय के विषय में नवीन हैं–नय प्रयोग का आपको कुछ भी अनुभव नहीं है।।77।। तुम्हारे इन वाक्यों से क्षुद्र मनुष्य लुभा सकता है उत्तम मनुष्य नहीं। क्या खरगोश के बन्धन से किसी ने सिंह को पकड़ा है ?।।78।। क्या एक ही सिंह के द्वारा बहुत से हाथी नहीं मारे जाते ? इस प्रकार दुःख के साथ जो मैंने कहा है उसकी युद्ध में प्रकटता हो जायेगी।।79।। सुख से रहने वाला दमितारि इतनी भूमि तक–इतने दूर तक आने के लिये कैसे समर्थ हो सकता है ? इसलिये मैं स्वयं चल कर उस चक्रवर्ती के साथ युद्ध करुंगा।।80।। इस प्रकार कह कर तलवार को ग्रहण करता हुआ जो उठना चाहता था ऐसे इस भाई को आपके आगमन के पहले मैंने किसी तरह रोका है।।81।। इस प्रकार युद्ध के लिये डांट कर राजा अपराजित ने जिसे छोड़ा था–विदा किया था ऐसे प्रीतिवर्धन दूत ने दमितारि की सभा के बीच जो बात जैसी हुई थी वैसी कह दी।।82।।

अथानन्तर शत्रु का उद्योग सुन कर दमितारि हँसा और उसने उसी समय सेनापति को आदेश दिया कि युद्ध के लिये शीघ्रता की जाय।।83।। तदनन्तर दण्डों के प्रहार से निरन्तर ताड़ित होने पर भी भेरी जोर से शब्द नहीं करती थी इससे ऐसी जान पड़ती थी मानों वह जिगीषु राजा अपराजित से भयभीत ही हो गयी थी।।84।। इस प्रकार संग्राम की भेरी बजायी गयी तथा चक्रवर्ती का शत्रु कौन है ? ऐसा विचार करते हुए लोगों ने उसका शब्द सुना।।85।। तदनन्तर शीघ्रता से युक्त सेनापति ने युद्ध सम्बन्धी शंख फूंक कर हड़बड़ायी हुई चतुरंग

सेना को तैयार किया।।86।। विद्याधर राजाओं ने सभा से लीला पूर्वक अपने घर जाकर असमय में युद्ध की हलचल होने पर भी स्वेच्छा से धीरे–धीरे कवच धारण किये थे।।87।। दो नरकीटों–क्षुद्र मनुष्यों को मारने के लिये राजा दमितारि का भी इतना प्रयास देखो, इस प्रकार कोई योद्धा हँस रहा था।।88।। धारण किये हुए कवचों में संलग्न रत्नों की किरणावली से योद्धा ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों वे अपराजित के द्वारा छोड़े हुए दूरपाती वाणों के समूह से ही व्याप्त हो रहे हों।।89।। अनेक सेनाओं का समूह मात्र दो को मारने के लिये जावेगा धिक्कार हो ऐसा कह कर किसी पानीदार योद्धा ने कवच धारण नहीं किया था।।90।। शत्रु किस नाम वाला है अथवा उसका महान बल कितना है ? इस विषय में चक्रवर्ती भी भ्रान्त है–भ्रांति में पड़ा हुआ है। क्या सचमुच ही वह अपराजित–अजेय है ?।।91।। योद्धाओं ! बताओ तो सही क्या उसने नगर को घेर लिया है जिससे प्रत्येक गली में सैनिक छा रहे हैं–इस प्रकार घबड़ाये हुए स्त्री पुरुष सैनिकों से पूछ रहे थे।।92।। दिन में भी उत्पात को सूचित करने वाले केतु–पुच्छली तारों को देख कर उन सैनिकों ने हर्ष से गगनचुम्बी केतु–पताकाएं फहरा दी थीं।।93।। याचकों के लिये सर्वस्व देकर तथा अपने–अपने कुल की ध्वजाओं को उठा कर आगे का स्थान प्राप्त करने की इच्छा से शूरवीरों ने शीघ्र ही प्रस्थान कर दिया।।94।। जहां तहां शीघ्रता करने वाले अपने अन्तरंग सामन्तों को हाथी घोड़ा तथा कवच आदि के द्वारा यथायोग्य विभक्त कर जो दुःखी, कार्पटिक, अनाथ और दीन याचकों के लिये सब ओर इच्छानुसार दान देने का आदेश दे रहा था, जो कुल के वृद्धजनों को नमस्कार कर सन्मानित कर रहा था, जो बजाये हुये अनेक वादित्र समूह के शब्दों से दिशाओं को शब्दायमान कर रहा था, अनेक अक्षौहिणी दलों से युक्त सेनाओं के द्वारा जो आकाश और पृथ्वी के अन्तराल को आच्छादित

कर रहा था, ग्रहण की हुई तलवारों से भयंकर मूलवर्ग–मंत्री आदि प्रधान लोग जिसे चारों ओर से घेरे हुए थे, और इस कारण जो सर्प सहित सैंकड़ों शाखाओं से युक्त चन्दन के वृक्ष को लज्जित कर रहा था, तथा जो दैदीप्यमान किरण समूह से युक्त, आगे चलने वाले चक्र के द्वारा भयंकर था ऐसा वह दमितारि, जिसमें धैर्यशाली घोड़े जुते हुए थे, जिसका गम्भीर शब्द था तथा जो सिंह के चिन्ह वाली पताका से सुशोभित था ऐसे युद्ध–कालीन रथ पर सवार होकर नगर से बाहर निकला।।95–100।।

तदनन्तर युद्ध की शीघ्रता से विषम अवस्था को प्राप्त पैदल सैनिकों के समूह को सब ओर व्यवस्थित कर तथा हाथियों के समूह को अश्वसमूह की रक्षा करने वाले रथारोहियों के मध्य में करके यह वह है–'अमूक व्यूह है' इस प्रकार की कल्पना कर सेनापति ने जिसकी रचना की थी ऐसी शत्रु सेना को निकटवर्ती अभ्युदय से युक्त अपराजित ने धीरे–धीरे दूर से देखा।।101।। 'शत्रु सेना के कलकल से डरती हुई कन्या की रक्षा करो' इस बहाने बहुत भारी शपथों द्वारा भाई अनन्तवीर्य को युद्ध से मना कर अपने समान समीचीन गुण रूपी सम्पदा से (पक्ष में श्रेष्ठ प्रत्यन्चा रूप सम्पदा से) अतिशय सुन्दर धनुष को चढ़ाने वाले अपराजित ने उसी समय सामने आने वाले क्षत्रिय समूह को निर्गुण–क्षात्र धर्म से रहित जैसा कर दिया था।।102।।

इस प्रकार महाकवि असग के द्वारा रचित शान्तिपुराण में शत्रु सेना को दिखाने वाला चतुर्थ सर्ग पूर्ण हुआ।।4।।

पंचम सर्गः

तदनन्तर अपराजित के द्वारा क्रम से बार–बार अस्फालित डोरी सहित धनुष सजलमेघ के समान निरन्तर जोरदार शब्द करने लगा।।1।। उसने दाहिने हाथ के द्वारा लीला पूर्वक तरकस से बाण खींच कर उसे तोला–हाथ में धारण किया और नेत्रों से शत्रु को तोला–उसकी स्थिति को आंका।।2।। पहाड़ों के बीच में आने वाली तथा गेरू आदि धातुओं की धूली के समूह से लालवर्ण वह सेना दूर से ऐसी जान पड़ती थी मानों अपराजित की प्रतापरूप अग्नि ने ही उसे अपने मध्य में कर लिया हो।।3।। आकाश और पृथ्वी के अन्तराल की विशालता के द्वारा भी जिसका माप नहीं हो सका था शत्रुओं की वह सेना अपराजित ने अपनी दृष्टि के द्वारा क्षणभर में माप ली। भावार्थ–देखते ही उसने शत्रुसेना की विशालता को समझ लिया।।4।। शत्रुओं का समूह अपराजित की दृष्टि का विषय होने पर पहले के समान दैदीप्यमान नहीं रहा सो ठीक ही है क्योंकि पराभव के निकट होने पर कौन सुशोभित होता है ? अर्थात् कोई नहीं। भावार्थ–शत्रुओं की सेना जैसी पहले उछल कूद कर रही थी अपराजित के देखने पर वैसी उछल कूद नहीं रही। पराभव की आशंका से उसका उत्साह शान्त हो गया।।5।। यद्यपि वह सेना अनन्त थी तथापि अपराजित ने उसे अपने लिये अपर्याप्त के समान माना था। यह ठीक ही है क्योंकि महान् पुरुषों को भविष्यत भी भूत के समान जान पड़ता है।।6।। जिसका आकार असाधारण था तथा अपने तेज से जिसे देखना कठिन था ऐसे अपराजित को प्राप्त कर शत्रुओं की सेना क्षणभर में लिखित के समान निश्चल हो गयी।।7।। धीर वीर बुद्धि का धारक अपराजित शत्रुओं के शस्त्र प्रहार की प्रतीक्षा करने लगा क्योंकि ऐसा कौन महापराक्रमी है जो शत्रुओं पर पहले प्रहार करता है।।8।।

तदनन्तर जिस प्रकार बरसात के प्रारम्भ में मेघ पर्वत पर जल छोड़ा करते हैं उसी प्रकार सब सैनिक एक साथ उस पर शस्त्र गिराने लगे।9।। सिंह नाद के द्वारा शत्रुओं की बड़ी भारी सेना को भयभीत कर तथा कान तक धनुष खींच कर वह बाण छोड़ने के लिये तत्पर हुआ।।10।। जो प्रत्येक योद्धा पर बाण छोड़ता हुआ गति विशेष से इधर–उधर घूम रहा था तथा शत्रु के शस्त्र से अपनी रक्षा कर रहा था ऐसा अपराजित युद्ध करने के लिये इस प्रकार प्रवृत्त हुआ।।11।। सैनिकों के द्वारा छोड़े हुए अनेक बाणों को वह बीच में ही एक साथ शीघ्र ही काट कर अपने बाणों से उन सैनिकों को भी तथा उनके कवचों को भी उस तरह गिरा देता था जिस तरह उनके बीच में कोई रन्ध्र नहीं रह पाता था। भावार्थ–उसने मृत सैनिकों तथा उनके कवचों से पृथ्वी को सन्धि रहित पाट दिया था।।12।। शत्रु चाहे अत्यन्त चञ्चल हों, चाहे दूर या निकट में स्थित हों अथवा छिपे हुऐ हों, उन सबको वह वीर अकेला ही शीघ्र तथा एक साथ बाणों के द्वारा पीड़ित कर रहा था।।13।। वह अनेकों बार धनुष सहित बाहर घूमता हुआ सुशोभित हो रहा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानों बड़े से बड़े शत्रुओं से उस व्यूह की रक्षा ही कर रहा हो।।14।। पक्षों से युक्त तथा तीक्ष्ण अग्रभाग वाले बाण ने वेग से आकर जिसे गिरा दिया था उसे उसी के समान पक्षों–पङ्खों से युक्त तथा तीक्ष्णमुख वाले कंक पक्षी ने अपने अधीन कर लिया था। भावार्थ–बाण के प्रहार से कोई योद्धा नीचे गिरा और गिरते ही कंक पक्षी ने उसे अपने अधीन कर लिया। बाण तथा कंक पक्षी में सादृश्य इसलिये था कि जिस प्रकार बाण पङ्खों से युक्त होता है उसी प्रकार कंक पक्षी भी पङ्खों से युक्त था तथा जिस प्रकार वाण का तुण्ड–अग्र भाग तीक्ष्ण–पेना होता है उसी प्रकार कंक पक्षी का तुण्ड–मुख भी पैना था।।15।। अपराजित को लक्ष्य कर दमितारि के सैनिकों के द्वारा छोड़े हुए सैकड़ों अस्त्र शस्त्रों से व्याप्त आकाश ऐसा जान पड़ता था मानों शस्त्र प्रहार के भय से वहाँ से कहीं चला गया हो।।16।। युद्ध में हाथी घोड़े रथ और पैदल सैनिकों में से कहीं एक को कहीं अनेक को

बार–बार मारता हुआ वह यमराज के समान हुआ था।।7।। उस धनुर्विद्या के जानकार अपराजित के द्वारा आक्रान्त दमितारि का चक्र नहीं चल रहा था जिससे जान पड़ता था मानों जीवित पकड़कर बाणों के पिंजड़े में डाल दिया गया हो।।8।।

वाणों से ग्रस्त होकर कितने ही विद्याधर गिर पड़े थे, कितने ही इधर– उधर घूमने लगे थे, कोई रक्त उगलने लगे थे और कोई म्लान हो गये थे।।9।। वह कभी एक प्रदेश में स्थित होता था, कभी अनेक प्रदेशों में स्थित होता था, कभी सर्वव्यापक दिखाई देता था, कभी महान् मालूम होता था और कभी सूक्ष्म जान पड़ता था, इसलिये क्या यह परमात्मा के समान है ऐसा संशय कर किन्हीं लोगों के द्वारा देखा गया था।।20।। जो घुस कर हृदय में स्थित था ऐसे असाधारण वाण को किसी योद्धा ने स्वयं निकाला था परन्तु घुस कर हृदय में स्थित प्रभु के प्रसाद को नहीं निकाला था। भावार्थ–शत्रु की मार खा कर भी किसी कृतज्ञ योद्धा ने स्वामी के उपकार को नहीं भुलाया था।।21।। जिनका प्रसाद ही धन है ऐसे बहुत योद्धाओं के मरने से कोई समीचीन (गुणज्ञ) राजा उस प्रकार दुखी नहीं हुआ था जिस प्रकार कि भरणपोषण से रहित एक सेवक के मरने से दुखी हुआ था।।22।। सेना के नष्ट हो जाने पर किसी राजा के आगे कोई दो तीन सेवक ही खड़े रह गये थे, शेष सब भाग गये थे सो ठीक ही है क्योंकि कष्ट में सहायता सब के द्वारा नहीं की जाती।।23।। स्वामी ने जो हमारा सत्कार किया है–हमारे साथ अच्छा व्यवहार किया है उसका बदला प्राणरूप धन के त्याग से ही हो सकता है–ऐसा मानता हुआ कोई योद्धा घावों से पीड़ित होने पर भी स्वामी के आगे खड़ा था।।24।। क्यों भूल रहे हो इस स्वामी के आगे होओ, क्या तुम अपनी कुल पुत्रता का स्मरण नहीं करते ? ।।25।। स्वामी के प्रसाद और दान का बदला इन विनश्वर–एक न एक दिन नष्ट हो जाने वाले प्राणों से क्यों नहीं चुकाते हो ? दूसरा अवसर नहीं

है।।26।। भय छोड़ो और सुभटों के योग्य शौर्य को ग्रहण करो। घर पहुँच कर भी क्या है ? इस तरह पूछने वाली स्त्री से क्या कहोगे ?।।27।। इस प्रकार कह कर युद्ध से पीछे हटने वाले अन्य योद्धाओं को युद्ध करने के इच्छुक किसी योद्धा ने खड़ा रक्खा था–भागने नहीं दिया था सो ठीक ही है क्योंकि वक्तृत्वशक्ति का फल वही है।।28।।

सुवृत्त–अच्छी गोल ढाल तथा सुवृत्त–सदाचार से युक्त, रोमाञ्चित और अनुराग से युक्त अपने आपको भी आगे कर किसी ने वाणों से स्वामी की अच्छी तरह रक्षा की थी।।29।। वाणों के आघात से कोई घोड़ा यद्यपि बार–बार उछल रहा था तथापि संभल कर बैठा हुआ अन्य योद्धा उसकी पीठ से नीचे नहीं गिरा था।।30।। जो योद्धा वाणपात के भय से पृथ्वी को छोड़ आकाश में स्थित था, अपराजित ने उसे भी वाणों से मार डाला।। यह ठीक ही था क्योंकि मृत्यु से कौन भाग सकता है ?।।31।। वाण समूह के पड़ने पर नीचे गिरे हुए सवार को घोड़ा ने छोड़ा नहीं था क्योंकि कष्ट पड़ने पर कौन कुलीन प्राणी अपने स्वामी को छोड़ता है ?।।32।। किसी योद्धा ने अपना जो शरीर युद्ध की विषमधूली से धूल रहित हो गया था उसे स्वामी के समीप युद्ध के रक्त से धोया था।।33।। किसी सुभट के हृदय में गड़े हुए बाण को स्वामी ने अपने हाथ से उस प्रकार निकाल दिया था जिस प्रकार आदर को प्राप्त हुआ मनुष्य अपने दुर्वचन को किसी के हृदय से निकाल देता है।।34।। कोई एक राजा भागने वाले अपने अन्तरंग पुरुषों में अपने अभागे सेवकों को आगे देखा लज्जा से व्याकुल हो गया था।।35।। घुड़सवार की जांघें वाणों से छिद गयी थीं उतने पर भी वह दौड़ते हुये घोड़े से नीचे गिर गया। इस स्थिति में वह शरीर को नम्रीभूत कर लम्बा पड़ा रहा। कवि कहते हैं यह क्या है वह तो मर कर भी सुशोभित होता।।36।। वाणों के द्वारा खण्डित किसी की दाहिनी अथवा बांयी भुजा से तलवार ही ऊपर

गिरी थी मन से युद्ध का उत्साह नहीं गिरा था।।37।। किसी मूर्च्छित सुभट को मुर्दा समझ कर शृगाल भाग गया।।38।। जीर्ण शीर्ण हड्डी के खण्ड रूपी नील कमलों से युक्त रुधिर रूपी मदिरा को पीकर पागल हुए शृगाल उच्च स्वर से शब्द कर रहे थे।।39।। जिन्हें जीवन प्रिय था ऐसे कितने ही सुभट वाणवर्षा के भय से लौट गये थे और जिन्हें पौरुष प्रिय था ऐसे कितने ही सुभट शत्रु के वाणों के सन्मुख गये थे।।40।।

वाणों से छिदकर नीचे पड़े हुए कितने ही योद्धा स्वामी के सन्मान का स्मरण करते हुए मान का आलम्बन ले यत्नपूर्वक उठकर खड़े हो गये।।41।। वाण समूह को छोड़ने वाले अपराजित ने न केवल रथारोहियों को रथ से दूर वियुक्त कर दिया था किन्तु नाना प्रकार के मनोरथों से भी वियुक्त कर दिया था।।42।। तीक्ष्ण वाणों की लगातार वर्षा से जिनकी मदरूपी स्याही और करसूंड नष्ट हो गयी है ऐसे हाथियों का समूह उस समय मन और शरीर–दोनों में विहस्त–विवश और सूंड रहित हो गया था।।43।। वाणों से पीड़ित एक पागल हाथी ने अपने सवार को भी कुचल डाला और अपनी सेना को चूर–चूर कर दिया सो ठीक ही है कि मदान्ध प्राणी की वही चेष्टा है।।44।। कानों को निश्चल कर जिसने नेत्रों को कुछ–कुछ संकोचित कर लिया था, सेना का कोलाहल सुन कर जो बार–बार भीतर ही भीतर गरज रहा था और जो अपने अंगों पर पड़े हुए वाणों को सूंड से निकाल कर लीला पूर्वक इधर–उधर फेंक रहा था ऐसा धीरता पूर्वक खड़ा हुआ हाथी, सवार की प्रेरणा की प्रतीक्षा कर अपनी जाति और शील की भद्रता को प्रकट कर रहा।।45–47।।

वह रणाङ्गण कहीं तो टूटे रथ के भीतर स्थित घावों से पीड़ित महारथियों से युक्त था। कहीं पड़े हुए अनेक हाथी रूपी पर्वतों से व्याप्त था। कहीं जिनके सैनिक मारे गये हैं ऐसे मात्र स्वामियों से युक्त था और उनसे जान पड़ता मानों शाखा रहित वृक्षों से ही व्याप्त हो। कहीं घुड़सवारों

से रहित अनेक घोड़ों की हिनहिनाहट से युक्त दिशाओं से सहित था। कहीं गिरे हुए सदवंश–उच्चकुलीन पक्ष में बांसों से सहित वीरों तथा ध्वजा से व्याप्त था। कहीं जहाँ शङ्ख बजाने वालों का उद्देश्य समाप्त हो गया था ऐसा था। कहीं सुनाई देने वाले शृगालियों के शब्द से युक्त था और कहीं नाचते–उछलते हुए कबन्धों– शिर रहित धड़ों से जिसका अन्तर समाप्त हो गया था ऐसा था। इस प्रकार उस एक के द्वारा आक्रान्त रणाङ्गण ऐसा हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि विजय लक्ष्मी का हेतु भाग्य ही है बहुत भारी सामग्री नहीं।।48–52।।

तदनन्तर अपराजित के द्वारा सेना के मारे जाने पर युद्ध के अहंकार से युक्त चित्रानीक नाम से प्रसिद्ध सेनापति ने शीघ्र ही युद्ध के लिये उसे बुलाया।।53।। महात्मा अपराजित अन्य को छोड़कर चित्रानीक सेनापति के आगे उस प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार सिंह झुण्ड को छोड़कर झुण्ड के स्वामी के आगे खड़ा हो जाता है।।54।। तदनन्तर रण के बीच वेग से कानों तक धनुष खींच कर दोनों धीरवीरों ने वाणों के द्वारा परस्पर–एक दूसरे को आच्छादित कर दिया।।55।। चिरकाल बाद छिद्र पाकर अपराजित ने एक बाण के द्वारा सेनापति के धनुष की डोरी काट डाली और दूसरे बाण से सेनापति को भी गिरा दिया।।56।।

तदनन्तर क्रोध से भरा हुआ महाबल नाम का वीर विद्याधर राजाओं को प्रोत्साहित कर तथा 'इस तरह उपेक्षा क्यों करते हो ?' यह कहकर युद्ध करने के लिये तत्पर हुआ।।57।। लौटो, अन्यत्र क्यों जाते हो ? सन्मुख स्थित होओ, यह तुम सब न रहोगे–अब जीवित न बचोगे, इस प्रकार उच्च स्वर से कहते हुए अपराजित ने उसे वाणों से विद्ध कर दिया।।58।। अपराजित उसके वाणों को अपने वाणों के द्वारा वेग से बीच में ही उस प्रकार छेद छालता था जिस प्रकार कि महासागर प्रवेश करने वाले महानद के ग्राहों को अपने ग्राहों के द्वारा बीच में ही छेद

डालता है।।59।। जब शत्रु धनुष विद्या के जानने वालों में श्रेष्ठ अपराजित को बाणों के द्वारा जीतने के लिये समर्थ नहीं हुआ तब वह क्रोध वश हाथ से छोड़े हुए चक्र आदि के द्वारा उसे ताड़ित करने लगा।।60।।

तदनन्तर उन सबको लेकर जब अपराजित वेग से छोड़ रहा था तब शत्रु के चारों ओर का आकाश छिद्र रहित हो गया था और ऐसा जान पड़ता था मानों कहीं चला जा रहा हो। भावार्थ–उस ओर से जो चक्र आदि शस्त्र अपराजित पर छोड़े जा रहे थे उन्हें वह झेलता जाता था और वेग से शत्रु पर ऐसी घनघोर वाण वर्षा कर रहा था कि आकाश उनसे भर गया था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानों कहीं भागा जा रहा हो।।61।। जीतने के इच्छुक विद्याधर ने जब अपराजित को भूमिपर स्थित मनुष्यों के द्वारा अजय्य समझा जीता नहीं जा सकता ऐसा विचार किया तब वह अनेक शरीर बनाकर आकाश में प्रविष्ट हुआ।।62।। तत्पश्चात् समस्त विद्याएँ अपना अवसर प्राप्त कर आज्ञा करो, ऐसा कहती हुईं अपराजित के पास आ गयीं। और उससे आज्ञा मांगने लगीं।।63।। परन्तु धीर वीर अपराजित पहले के समान युद्ध कर रहा था मानों उसने उन विद्याओं की ओर देखा ही न हो। ठीक ही है क्योंकि महान् पुरुष कष्ट के समय दूसरे की प्रतीक्षा नहीं करता है।।64।। यद्यपि अपराजित ने उन विद्याओं की अपेक्षा नहीं की थी तो भी उन्होंने उसके शत्रु को मारना शुरु कर दिया था सो ठीक ही है क्योंकि प्रभु के समीप रहने वाला कौन पुरुष प्रभु की चेष्टा के समान कार्य नहीं करता ?।।65।। विद्याओं के साथ स्पर्द्धा होने से ही मानों आगे गये हुए वाणों के द्वारा उसने सैंकड़ों महाबलों को उसी क्षण आकाश से दूर कर दिया था। भावार्थ–महाबल विद्याधर विद्याओं के बल से सैंकड़ों रूप बनाकर आकाश में चला गया था और वहां से अपराजित पर प्रहार कर रहा था परन्तु अपराजित ने ही शीघ्रगामी वाणों के द्वारा उन सबको खदेड़ दिया था।।66।। उस महाबल के मारे जाने पर न केवल आश्चर्यचकित शत्रु सैनिकों ने अपराजित को बार–बार देखा था किन्तु आकाश में स्थित देवों ने भी देखा था।।67।।

तदनन्तर लपलपाती हुई उज्ज्वल तलवारों की किरणों से आकाश को मलिन करने वाले रत्नग्रीव आदि अनेक विद्याधर राजा युद्ध के लिये उद्यत हुए।।68।। अपनी विद्याओं से निर्मित, तीक्ष्ण तथा भयंकर शरीर वाले वेतालों के द्वारा आकाश को आच्छादित कर वे वीर चारों ओर से अपराजित पर टूट पड़े।।69।। आग्नेयास्त्र की हजारों अग्नि ज्वालाओं से दिशाएँ आच्छादित हो गयीं और उनसे वे उस समय ऐसी सुशोभित होने लगीं मानों किसी ने उन्हें बिजलियों से सहित ही कर दिया हो।।70।। जिनके मुख विषरूपी अग्नि से भयंकर थे ऐसे काले सर्पों ने आकाश को ऐसा घेर लिया मानो अशोक के लाल-लाल पल्लवों से युक्त नील कमलों की बड़ी-बड़ी उत्कृष्ट मालाओं ने ही घेर लिया हो।।71।। उन विद्याधरों के द्वारा छोड़े जाकर पड़े हुए शक्ति, अष्टि, परिघ, भाले, गदा, मुशल और मुद्गरों से व्याप्त भूमि अस्त्रों से तन्मय जैसी हो गयी थी।।72।। कितने ही विद्याधरों ने भीमाकार-भयंकर शरीरों से आकाश को आच्छादित कर लिया और अन्य विद्याधर स्वयं मेघ बनकर उसे वाण की धाराओं-वाणरूपी जल की धाराओं से आच्छादित करने लगे।।73।।शत्रुओं तथा अपराजित के द्वारा छोड़े हुए शस्त्रों के संघट्टन से उत्पन्न हुई बहुत भारी अग्नि बीच में ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों उस युद्ध को रोक ही रही हो।।74।। अपराजित के द्वारा मारे हुए कितने ही विद्याधर नीचे की ओर शिर कर आकाश से गिर रहे थे जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों लज्जा के कारण ही उन्होंने उलटे कवचों से अपने मुख ढक लिये थे।।75।।

पूर्वपुण्यसमूह के समान अपने अधीन की हुई महा जाल विद्या के द्वारा अपराजित ने शत्रुओं की समस्त विद्याओं को छेद दिया था।।76।। शत्रुओं के अनेक झुण्डों को मारता हुआ वह विस्मय को प्राप्त नहीं हुआ सो ठीक ही है क्योंकि साहस करने वाले सत्पुरुषों को वही योग्य है। भावार्थ-पराक्रमी सत्पुरुषों को विस्मय न करना ही उचित है।।77।।

अपराजित के द्वारा यद्यपि रत्नग्रीव की समस्त सेना नष्ट कर दी गयी थी तो भी वह पीड़ित नहीं हुआ सो ठीक ही है क्योंकि विपत्ति के समय महापुरुषों के मन से धैर्य नहीं जाता है।।78।। वह बांये हाथ की अंगुलियों से तलवार का स्पर्श करता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों चंचल विजयलक्ष्मी को उसी पर निश्चल कर रहा हो।।79।। उसने थके हुए शत्रु को क्रोध से युद्ध के लिये पुनः ललकारा सो ठीक ही है क्योंकि तेज से दैदीप्यमान शत्रु को कौन पराक्रमी सहन करता है ? ।।80।। उसने नाना प्रकार के शस्त्र और अनेक विद्याओं के संमर्द से ऐसा युद्ध ज़ारी किया जिसमें बहुत भारी कलकल शब्द हो रहा था।।81।।

शत्रुओं के ऊपर लगातार शस्त्रों की वर्षा करने से वह अपराजित एक होकर भी अनेक रूपता को प्राप्त होता हुआ ऐसा जान पड़ता था मानों उसने दिशाओं के साथ समस्त आकाश को अपने से तन्मय कर लिया हो। भावार्थ–जहाँ देखो वहाँ अपराजित ही अपराजित दिखायी देता था।।82।। नष्ट होने से शेष बचे हुए सैनिकों ने बार–बार कोलाहल किया। उससे क्षणभर ऐसा लगा जैसे शत्रु ने अपराजित को दबा लिया हो।।83।। उत्साह से युक्त सेना का शब्द सुनकर अनन्तवीर्य विमान से इस प्रकार निकला जिस प्रकार गुहा के मुख से सिंह निकलता है।।84।। रणभूमि में विद्यमान तथा बलभद्रपद के धारक अपराजित ने अपनी दाहिनी भुजा पर आरूढ़ हल के द्वारा उस भयंकर शत्रु को मार डाला।।85।। लीलापूर्वक–अनायास ही शत्रु को मार कर ज्यों ही अपराजित ने दिशाओं की ओर देखा त्यों ही अपने मूर्त–शरीरधारी पराक्रम के समान आये हुए छोटे भाई अनन्त वीर्य को देखा। देखते समय अपराजित मन्दमुस्कान से युक्त था।।86।। जो थोड़ा ही शेष बचा है ऐसे रण का, रण को समाप्त करने वाला प्रसाद मुझे दीजिये यह कहते हुए छोटे भाई अनन्तवीर्य ने बड़े भाई–अपराजित को प्रणाम किया। भावार्थ–शत्रु पक्ष के सब लोग मारे जा चुके हैं एक दमितारि ही

शेष बचा है अतः इसके साथ युद्ध करने की आज्ञा मुझे दीजिये। मैं दमितारि को मार कर युद्ध समाप्त कर दूँगा–इन शब्दों के साथ अनन्तवीर्य ने अपराजित को प्रणाम किया।।87।।

तदनन्तर जिसमें समस्त घोड़े अथवा रण का भार धारण करने वाले प्रधान पुरुष मारे जा चुके हैं और जिसमें टूटे फूटे रथ शेष बचे हैं ऐसे भयंकर रण के भार को धैर्य के भण्डार दमितारि ने स्वयं धारण किया।।88।। जिसने शत्रुओं के समूह को नष्ट कर दिया है ऐसे चक्ररत्न के समान महान् पराक्रम के द्वारा वह उन दोनों–अपराजित और अनन्तवीर्य को जीतने के लिये बहुत भारी उत्साह से युक्त हुआ।।89।।

मरने से शेष बची हुई घबड़ायी सेना को तो उसने पीछे छोड़ा और कीर्ति के समान सफेद पताका को आगे कर प्रस्थान किया।।90।। उछलते हुए कबन्धों–शिर रहित धड़ों से भयभीत घोड़ों के बार–बार लौट पड़ने से जिसकी चाल तिरछी थी तथा जिसका सारथि घावों से जर्जर था ऐसे रथ पर आरूढ़ होकर वह चल रहा था।।91।। अनेक बाणों के प्रहार से जिनके शरीर जर्जर कर दिये गये थे तथा जो पीछे–पीछे आ रहे थे धीर वीर योद्धाओं को देखकर वह कह रहा था कि तुम लोग बैठो–बैठो–साथ आने की आवश्यकता नहीं है।।92।। पसीना पोंछने का बहाना लेकर वह उस कवच को जिसकी गांठों के बन्धन दूसरे लोगों ने छोड़े थे, स्वयं खोल रहा था।।93।। जो अक्षत थे–जिन्हें कोई चोट नहीं लगी थी, जो रथ से रहित थे–पैदल चल रहे थे और जिन्होंने पूर्व पुण्य के समान उस समय भी साथ नहीं छोड़ा था ऐसे कुछ महान् योद्धा उसे घेरे हुए थे–उसके साथ साथ चल रहे थे।।94।। चक्ररत्न के समान घात करने की इच्छा करने वाला शत्रु जिसे दूर से ही देख रहा था ऐसा विद्याधरों का राजा दमितारि वाण वर्षा करता हुआ शत्रु के सम्मुख जा रहा था।।95।।

उसने कुछ दूर जाकर छोटे भाई सहित अपराजित को देखा। 'यह वह है' इस प्रकार सारथि ने हकनी से उसका संकेत किया था।।96।। तदनन्तर धनुष को प्रत्यञ्चा से युक्त कर उसने रथ के भीतर एकत्रित वाणों को अलग–अलग ग्रहण किया और पश्चात् इस प्रकार छोड़ना शुरु किया।।97।। पहले तो उसने दोनों भाईयों को वचन से डांटा, पश्चात् कान तक धनुष खींच कर और उस पर वाण चढ़ा कर मजबूत मुट्ठी से मारना शुरू किया।।98।। जिनके संधान–धारण करने और मोक्ष–छोड़ने का पता नहीं चलता ऐसे वाणों को धनुष की डोरी ने आगे छोड़ दिया परन्तु वाचाल मनुष्य के समान उसने दमितारि के कर्णमूल को नहीं छोड़ा। भावार्थ–जिस प्रकार वाचाल–चापलूस मनुष्य सदा कान के पास लगा रहता है उसी प्रकार धनुष की डोरी भी सदा उसके कान के पास लगी रहती थी अर्थात् वह सदा डोरी खींच कर वाण छोड़ता रहता था।।99।।

तदनन्तर प्रलय काल के क्षुभित समुद्र के ज्वारभाटा के समान अनन्तवीर्य, भाई की आज्ञा से युद्ध के लिये चला।।100।। जिसने कान तक धनुष खींच रक्खा था ऐसे अनन्तवीर्य ने आगे पीछे की मुट्ठियों को मजबूत कर निरन्तर बड़े वेग से वाणसमूह को छोड़ना शुरू किया।।101।। युद्ध करते हुए उन दोनों ने अनेक वाणों के समूह से समस्त दिशाओं को आच्छादित कर सृष्टि को वाणों से तन्मय कर दिया।।102।। उन दोनों–अनन्तवीर्य और दमितारि के युद्ध को समता से देखते हुए अपराजित ने उसी क्षण अपनी महानुभावता को प्रकट कर दिया था।।103।। अनन्तवीर्य ने वाणों के द्वारा दमितारि के समीचीन वांस से निर्मित तथा पहले कभी खण्डित नहीं होने वाले धनुष से डोरी को अलग कर दिया परन्तु उसके विस्तृत पराक्रम को अलग नहीं किया। भावार्थ–यद्यपि अनन्तवीर्य ने वाण चलाकर दमितारि के धनुष की डोरी को खण्डित कर दिया था तो भी उसका रणोत्साह खण्डित नहीं हुआ था।।104।।

दमितारि निर्गुण–शीलादि गुण रहित स्त्री के समान निर्गुण–डोरी रहित धनुष को शीघ्र ही छोड़ कर कटाक्ष से चक्र की ओर देखता हुआ अनन्तवीर्य से इस प्रकार बोला।॥05॥ तू युद्ध से दूर लौट जा, व्यर्थ ही पतङ्ग मत बन, जिन्होंने युद्ध देखा नहीं है ऐसे तुझ जैसे बालकों को मैं नहीं मारता।॥06॥ अपराजित के निकट रहने से तू व्यर्थ ही सुभट के समान आचरण कर रहा है, विमान में जा और उसी में बैठ, तू रणाङ्गण के योग्य नहीं है।॥07॥ इस प्रकार की वाणी कह कर जब चक्रवर्ती चुप हो गया तब कुपित हृदय अनन्तवीर्य मित्र के समान धनुष का आलम्बन लेकर उससे इस प्रकार बोला।॥08॥

हथियारों के द्वारा होने वाले इस युद्ध में वचनों का अवसर कहाँ है ? क्या हाथी ने प्रौढ़ होने पर भी किसी सिंह के बच्चे को मारा है ?।॥09॥ यदि विश्राम कर चुके हो तो शस्त्र उठाओ। युद्ध से खिन्न मनुष्य को कौन मारता है ? मैं तीक्ष्ण वाणों के द्वारा क्या तुम्हारे इस चक्र को तोड़ दूं ?।॥10॥ इस प्रकार अनन्तवीर्य के द्वारा कही हुई अहङ्कार पूर्ण वाणी को सुन कर उस दमितारि ने क्रोधवश शत्रु के प्रति चक्र को आज्ञा दे दी।॥11॥ आज्ञाकाल में ही वह चक्र जाकर अपनी बहुत भारी किरणों के समूह से अनन्तवीर्य के ऊँचे दाहिने कन्धे को अलंकृत करने लगा।॥12॥ तब अहङ्कार से भरा दमितारि मैं पहले चक्र को गिराता हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा कर तलवार ले आगे बढ़ा।॥13॥ इस प्रकार सम्मुख आते हुए दमितारि के उस शिर को, जिसका ललाट चढ़ी हुई भौंह से भयंकर था, अनन्तवीर्य ने तत्काल चक्र से छेद दिया।॥14॥अपने स्वामी की मृत्यु से क्रुद्ध उद्दण्ड सुभटों ने यद्यपि अपना पराक्रम दिखाया परन्तु वे उस चक्ररत्न की धारारूपी अग्नि में पतङ्ग के समान जल मरे। भावार्थ–जिन अन्य सुभटों ने पराक्रम दिखाया वे भी उसी चक्ररत्न से मारे गये।॥15॥

इस प्रकार चक्ररत्न के स्वामी, उपस्थित शत्रु–दमितारि को मार कर दैदीप्यमान किरणों के समूह से जटिल तथा आकाश श्यामल चक्ररत्न को धारण करने वाला अनन्तवीर्य जब अपने सामने आया तो बड़े भाई अपराजित ने क्षणभर आश्चर्य चकित हो उसे चलते फिरते उस अञ्जनगिरि के समान देखा जिसके ऊपर सूर्य संलग्न है।॥16॥
बहुत बड़े प्रतिज्ञा रूपी समुद्र के द्वितीय पार को प्राप्त कर अपराजित ने उसी क्षण स्नेह के कारण उत्तम साहस से स्नेह रखने वाली लक्ष्मी छोटे भाई अनन्तवीर्य के लिये सौंप दी और स्वयं बाहुबल से 'अपराजित' इस सार्थक नाम के धारक हुए। विद्याओं ने उसी रणभूमि में बड़े आदर से उनदोनों की पूजा प्रतिष्ठा की।॥17॥

इस प्रकार महाकवि असग द्वारा विरचित शान्तिपुराण में अपराजित की विजय का वर्णन करने वाला

पंचम सर्ग समाप्त हुआ।

षष्ठः सर्गः

अथानन्तर बलभद्र अपराजित ने पिता के मरण सम्बन्धी शोक और बहुत भारी लोकापवाद से संतप्त कनकश्री को शीघ्र ही सान्त्वना देकर, दमितारि का अन्तिम संस्कार कराया। वह अन्तिम संस्कार अन्तकाल में पहिनाये जाने वाले आभूषणादि पहिनाने की प्रक्रिया को पूरा कर किया गया था तथा उसके बहुत भारी पराक्रम के अनुरूप सम्पन्न हुआ था।।1–2।। जो हाथ जोड़कर तथा नाम ले ले कर पराक्रम का व्याख्यान करते हुए स्तुति कर रहे थे ऐसे मरने से शेष बचे भयभीत विद्याधरों के लिये उसने अभय की घोषणा की थी।।3।। अपराजित ने जब उस प्रकार की भयङ्कर शत्रुओं की सामूहिक मृत्यु देखी तब वह पाप से ग्लानि करता हुआ मन में अपने कार्य की निन्दा करने लगा।।4।।

तदनन्तर अपनी नगरी के विषय में उत्कण्ठित अपराजित ने चक्रवर्ती भाई को आगे कर कन्या के साथ विमान द्वारा प्रस्थान किया।।5।। वेग के कारण जिसकी पताका निश्चल थी ऐसा बहुत भारी वेग से जाता हुआ वह विमान आकाश में सहसा निश्चल खड़ा हो गया।।6।। महापराक्रमी अपराजित विमान की गति के नष्ट होने का कारण देखने की इच्छा से जब वह विमान से नीचे उतरा तो उसने भूतरमण नाम की अटवी देखी।।7।। वहाँ उसने काञ्चन गिरि पर्वत पर उसी समय समस्त घातिया कर्मों का क्षय करने से महिमा को प्राप्त मुनि को देखा।।8।। उन्हें देख वह विमान में वापिस गया और कन्या के साथ भाई को ले आया।। पश्चात् वन्दनाप्रिय अपराजित तथा अनन्तवीर्य और कनकश्री ने हर्ष पूर्वक केवलीभगवान् को नमस्कार किया।।9।।

जो चामरयुगल, अशोक वृक्ष और सिंहासन से सहित थे जिनका भामण्डल दैदीप्यमान था, जो सफेद वर्ण के एक छत्र से सुशोभित थे

और भव्यत्वभाव से प्रेरित चार प्रकार के नम्रीभूत देव भक्ति द्वारा कल्पवृक्ष के फूलों की वर्षा कर जिनकी सेवा कर रहे थे ऐसे उन केवली भगवान् से पिता के नवीन शोक से दुःखी कनकश्री ने अपने भवान्तर पूछे और मुनिराज उसके भवान्तर इस प्रकार कहने लगे।।10–12।।

वह जो धातकी तिलक नाम का दूसरा द्वीप है उसकी पूर्व दिशा सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्र में एक शङ्खपुर नाम का ग्राम है।।13।। वहाँ एक देवक नामका गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री का नाम पृथुश्री था। वह नाम से पृथुश्री थी, बहुतभारी पुण्य से पृथुश्री–अत्यधिक लक्ष्मीवाली नहीं थी।।14।। वे दोनों अधिक सम्पन्न नहीं थे, साथ ही सुपुत्र के न होने से उसके अलाभरूपी अग्नि से उनका मन संतप्त रहता था। कालक्रम से उनके सात पुत्रियाँ हुईं। जो कानी, लंगड़ी, टूटे हाथ वाली, पंगु, कुष्ठरोग से युक्त तथा कुबड़ी थीं। उन सब पुत्रियों में बड़ी तथा पूर्ण अङ्गों वाली तू ही एक थी और तेरा नाम श्रीदत्ता था।।15–16।। माता पिता का मरण हो जाने पर तू ही उन सबके भरणपोषण की आकुलता रखती थी। तुझे अपना पेट भरने का ध्यान नहीं रहता था और विना किसी व्यग्रता के गृह कार्य में तत्पर रहती थी।।17।। कष्टपूर्णस्थिति के कारण जो समान थीं अर्थात् एक समान दुखी थीं ऐसी वे छहों बहिनें तुझे पृथक् पृथक् पीड़ित करती थीं–खोटे वचन कहती थीं फिर भी तू धीरता को नहीं छोड़ती थी।।18।।

एक समय तू उनकी इच्छाओं के समूह को पूर्ण करने के लिये फल तोड़ती हुई शङ्खपर्वत के निकट जा पहुँची।।19।। मनोहर फल तोड़ कर तू लौट रही थी तब तूने वहाँ मनुष्यों को धर्म का उपदेश देते हुए सर्वयश नामक मुनिराज देखे।।20।। तू उन तपस्वी मुनिराज से धर्मचक्रवाल नाम का उपवास तथा शक्ति के अनुसार व्रत लेकर वहां से घर आयी।।21।। जो एक–एक उपवास की वृद्धि से सहित है तथा इक्कीस दिन में पूर्ण होता है ऐसे धर्मचक्रवाल– उपवास कर तू शरीर से

तो कृश हो गयी थी पर मन से कृश नहीं हुई थी। भावार्थ–धर्मचक्रवाल उपवास में एक उपवास एक आहार, दो उपवास एक आहार, तीन उपवास एक आहार, चार उपवास एक आहार, पाँच उपवास एक आहार और छह उपवास एक आहार इस प्रकार उपवास के 21 दिन होते हैं। इस कठिन उपवास के करने से यद्यपि श्रीदत्ता का शरीर कृश हो गया था तो भी मन का उत्साह कृश नहीं हुआ था।।22।। किसी समय तूने उत्तम व्रतों को धारण करने वाली सुव्रता नाम की आर्यिका को आहार कराया। आहार करने के बाद उन्हें वमन हो गया। उस वमन में तूने बार–बार बहुत ग्लानि की।।23।। एक समय तूने पति के समागम से पर्वत पर प्रसव करने वाली सुन्दर विद्याधरी को देखकर व्यर्थ ही निंदान किया था।।24।।

तदनन्तर मर कर तू धर्म के प्रभाव से सौधर्मस्वर्ग में बिजली के समान कान्ति वाली विद्युत्प्रभा नामकी देवी हुई तथा इन्द्र की वल्लभा–प्रिय देवाङ्गना हुई।।25।। वहाँ से चय कर निदान बन्ध के कारण अर्धचक्रवर्ती दमितारि की मन्दिरा नाम की उत्तम प्रिय पुत्री हुई।।26।। शिव मन्दिर नगर में रहने वाले कनकपुङ्ख राजा की जयदेवी नामक पत्नी से मैं कीर्तिधर नामका बड़ा पुत्र हुआ।।27।। तदनन्तर श्रेष्ठ राज्य को धारण करने वाले मेरे, मेरी पवनवेगा रानी से महायुद्धों को जीतने वाला दमितारि नाम का बड़ा पुत्र हुआ ॥28॥ उस पर विशाल लक्ष्मी को सौंप कर मैंने शान्ति करने वाले शान्तमोह नामक मुनिराज को नमस्कार किया और नमस्कार कर कठिन तप ले लिया। भावार्थ–शान्तमोह नामक मुनिराज के पास दैगम्बरी दीक्षा ले ली।।29।। एक वर्ष तक प्रतिमा योग से खड़े रहकर तथा ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा घातिया कर्म रूपी लकड़ियों को भस्म कर मैं क्रम से केवली हुआ हूँ।।30।। तुमने श्रीदत्ता के भव में सुव्रता आर्यिका के साथ जो ग्लानि की थी उसके फल से यह नरक निवास के तुल्य असहनीय बन्धुजनों का दुःख सहन किया है। इस दुःख की तुझे कल्पना भी नहीं थी।।31।। इस प्रकार कनकश्री के भवान्तर

कहकर जब केवली भगवान रुक गये तब अपराजित और अनन्तवीर्य उन्हें प्रणाम कर कनकश्री के साथ अपने विमान में चले गये।।32।। विमान पर चढ़कर तथा कनकश्री को लेकर दोनों राजा केवली भगवान् के वचन हृदय में रखते हुए आकाश मार्ग से अपनी नगरी की ओर चल दिये।।33।।

वहाँ जाकर उन्होंने जो विद्युद्दंष्ट्र और सुदंष्ट्र के द्वारा घिरी हुई है तथा चित्रसेन सेनापति सब ओर से जिसकी रक्षा कर रहा है ऐसी अपनी नगरी देखी।।34।। 'मेरे इन भाइयों को मत मारो' इस प्रकार कन्या के कहने पर भी अनन्तवीर्य ने क्रोध से प्रदीप्त शत्रु के पुत्रों को मार डाला।।35।। शत्रु का घेरा नष्ट हो जाने से वह नगरी मेघ से रहित, अत्यन्त निर्मल शरद्ऋतु के आकाश के समान अत्यधिक सुशोभित होने लगी।।36।। तदनन्तर जिनके नेत्र टिमकार से रहित हैं तथा जो क्षणभर के लिये पृथ्वी पर स्थित देवों के समान जान पड़ते हैं ऐसे नगर वासियों ने आश्चर्यचकित होकर सैनिकों के साथ उन दोनों भाइयों को देखा।।37।। विजय और आगमन के उपलक्ष्य में जिसके महलों पर नगर वासियों ने निरन्तर दूनी पताकाएँ फहरायी थीं ऐसी नगरी में उन दोनों राजाओं ने प्रवेश किया।।38।। शत्रु के शस्त्रों की चोट से उत्पन्न कालिमा से जिनका वक्षस्थल व्याप्त था ऐसे बड़े राजा अपराजित को नगर की स्त्रियों ने मानों 'यह कोई अन्य है' ऐसी आशङ्का कर देखा था।।39।। दोनों भुजाएँ ही जिसकी सहायक हैं ऐसे इस एक ने प्रतिज्ञानुसार शत्रु की सेना जीती और नायकों को मार गिराया।।40।। और यह छोटा भाई अनन्तवीर्य इसके प्रसाद से चक्रधर हो गया। इस वंश में ऐसा पराक्रमी न हुआ है न होगा।।41।। इस प्रकार सभी ओर अपने आपको लक्ष्य कर कहते हुए मनुष्यों के शब्द सुनता हुआ बलभद्र–अपराजित अन्तरङ्ग में लज्जित हो रहा था।।42।। इस प्रकार अपनी कथा में लीन नगरवासियों के द्वारा घिरे हुए राजाधिराजों ने उत्सव से परिपूर्ण राज महल में प्रवेश किया।।43।।

तदनन्तर उन बलभद्र और नारायण ने पहले जिनेन्द्र भगवान की अष्टान्हिक पूजा की पश्चात् हर्ष पूर्वक चक्र की पूजा की।।44।। तत्काल उपस्थित होकर सेवा करने वाले देव, राजा तथा विद्याधरों ने उनके दिग्विजय का उद्योग निराकृत कर दिया था। भावार्थ–उनकी प्रभुता देख देव, राजा तथा विद्याधर स्वयं आकर सेवा करने लगे थे इसलिये उन्हें दिग्विजय के लिये नहीं जाना पड़ा।।45।।

अन्य समय परिवार की स्त्री के मुख से विवाह सम्बन्धी आरम्भ को सुनकर कनकश्री तत्काल ऐसा विचार करने लगी।।46।। वैसे पिता का वंश और लोकोत्तर निन्दा ये दोनों घर में रहकर मेरे द्वारा छोड़े जाने वाले आंसुओं से नहीं धोये जा सकते।।47।। कष्ट पूर्ण दशा को स्वीकृत कर यदि मैं विवाह को प्राप्त होती हूँ तो लोग भी मुझ दुराचारिणी को तृण भी नहीं समझेंगे।।48।। वे स्त्रियाँ धन्य हैं, वे महापराक्रमी अथवा धैर्य शालिनी हैं और सचमुच ही वे कुलदेवता हैं जिनका यौवन निन्दा के बिना व्यतीत होता है।।49।। मैं निरन्तर जल रही हूँ अत: मेरे मन को सुख कैसे हो सकता है? वास्तव में मन के संतुष्ट होने पर ही जीवों को सुख होता है।।50।।।1 इसलिये दीक्षा लेना ही मेरे लिये कल्याणकारी है गृहस्थपन कल्याणकारी नहीं है। क्योंकि तप के बिना कलङ्क धोने का दूसरा उपाय नहीं है।।51।। इस प्रकार शोक से दुखी शीलवती कनकश्री ने तप के लिये निश्चय कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि कुलीन कन्याएँ योग्य कार्य के बिना अन्य कारणों से सुख की इच्छा नहीं करतीं।।52।। ऐसा निश्चय कर तथा चित्त को स्थिर कर वह बुद्धिमती बलभद्र सहित नारायण के पास गयी और उसी क्षण परस्पर इस प्रकार वचन कहने लगी।।53।।

प्रसाद से सुशोभित तथा अतिशय दुर्लभ आप दोनों की प्रीति को प्राप्त कर मेरा मन पिता का शोक छोड़ने के लिये समर्थ नहीं है।।54।। निन्दा रहित जीवन, क्रमबद्ध सुख, अखण्ड शौर्य और मानसिक व्यथा

को दूर करने वाला धैर्य ही कल्याणकारी है।।55।। मैं शोक से निरन्तर रोती रहती हूँ अत: मेरी आँखें फूल गयी हैं और मैं सोती नहीं इसलिये मेरा मुख कान्ति रहित होकर सूज गया है।।56।। मेरे शोक संतप्त चित्त से धैर्य कहीं चला गया है और पद पद पर आने वाली पिता की स्मृति माता के समान मुझे छोड़ नहीं रही हैं।।57।। कुल के क्षय से उत्पन्न यह बहुत भारी अपयश का भार मुझ तुच्छ नारी के द्वारा कैसे ढोया जा सकता है ?।।58।। मैं लोक से उस प्रकार लज्जित नहीं होती जिस प्रकार कि आभूषणस्वरूप लोकोत्तर सदाचरण को धारण करने वाले आप दोनों से अत्यन्त लज्जित होती हूँ।।59।। क्या कुलीन पुरुष लज्जा और लोकापवाद की उपेक्षा कर तथा परमार्थ से जानने योग्य तत्व को जानकर घर में खड़े रहते हैं ?।।60।। मैं वैसे महान आत्मा दमितारि की पुत्री होकर यहाँ मनुष्यों की अँगुलि सम्बन्धित छाया में स्थित रहने के लिये उत्साहित नहीं हूँ।।62।। व्यर्थ ही यहाँ रुकने वाली मुझसे आपका कोई कार्य भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि मुझ जैसी क्रूर पापिनी कन्या को कौन सचेतन स्वीकृत करेगा ?।।63।। इस प्रकार की उदार वाणी कह कर वह चुप हो रही ! वास्तव में वह शरीर मात्र से वहाँ स्थित थी चित्त से तो तपोवन पहुँच चुकी थी।।64।। बलभद्र और नारायण उसे सान्त्वनाओं तथा नानाप्रकार के प्रलोभनों के द्वारा अपने निश्चय से नहीं लौटा सके यह ठीक है क्योंकि वैराग्य के मार्ग में स्थित मनुष्य के विषय में उपाय क्या कर सकते हैं ?।।65।। तदनन्तर चार हजार कन्याओं के साथ कनकश्री ने स्वयंप्रभ जिनेन्द्र को नमस्कार कर दीक्षा धारण कर ली।।66।।

अथानन्तर बलभद्र अपराजित की रूप लावण्य से सहित तथा मर्यादा से सुशोभित विरजा नाम की सुन्दर रानी थी।।67।। अन्तरङ्ग से प्रसन्न रहने वाली उस रानी से बलभद्र ने दैदीप्यमान प्रभा को धारण करने वाली पुत्री को उस प्रकार उत्पन्न किया जिस प्रकार कि शरद्

काल भीतर से स्वच्छ रहने वाली सरसी में कमलिनी को उत्पन्न करता है।।68।। उसके रूप के समान होने वाली बुद्धि का विचार कर बलभद्र ने एक समय नारायण के साथ उस पुत्री का नाम सुमति रक्खा। भावार्थ–जैसा इसका अद्वितीय रूप है वैसी ही इसकी अद्वितीय बुद्धि होगी ऐसा विचार कर बलभद्र अपराजित ने नारायण के साथ सलाह कर पुत्री का सुमति नाम रक्खा।।69।। बालावस्था में भी उसकी जिनेन्द्रभगवान् में परमभक्ति थी तथा विद्वानों के द्वारा उपासनीय वह संसार की भी असारता को जानती थी।।70।। अनेक कलाओं से सहित वह पुत्री चन्द्रमूर्ति के समान कलाओं के ओज से परिपूर्ण थी तथा लावण्य को धारण करती हुई वह तीनों लोकों को तिरस्कृत कर वैदीप्यमान हो रही थी।।71।। खिलते हुए नव यौवन से युक्त वह सौन्दर्य भी उसे प्राप्त हुआ था जिसे देखने वाले मनुष्यों का न केवल नेत्र किन्तु मन भी विचार में पड़ जाता था।।72।।

एक दिन जिसकी कमर पतली थी और स्तनों का भार अधिक था ऐसी उस पुत्री को देख कर पिता इस चिन्ता में पड़ गया कि यह शुभ पुत्री किसके लिये दूंगा।।73।। तदनन्तर मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करके भी वह क्षत्रियों में किसी ऐसे वर को नहीं देख सका जो पुत्री के अनुरूप सुन्दर हो।।74।। इधर उसे यह भी विदित हुआ कि सब राजकुमार उसकी चाह से आकुल हो रहे हैं–उसे चाह रहे हैं तब उसने विरोध रहित यथावसर स्वयंवर की घोषणा करा दी। भावार्थ–अनेक राजकुमारों की मांग होने पर जिसे पुत्री नहीं दी जायेंगी वह विरोधी हो जायेगा। इसलिये इस अवसर में स्वयंवर ही अनुकूल उपाय उसे दिखा। स्वयंवर में पुत्री जिसे पसन्द करेगी उसे वह दे दी जायेगी, यह सब विचार कर पिता ने स्वयंवर की घोषणा करा दी।।75।।

तदनन्तर दूत के कहने से राजाओं को आया हुआ सुनकर भूपति अपराजित ने उसे नगरी को उत्सव से युक्त किया।।76।। राजपुत्री को प्राप्त करने की इच्छा से व्याकुलता को प्राप्त हुए राजा परस्पर की

स्पर्धा से आकर नगरी के बगीचों में अलग–अलग ठहर गये।।77।। तदनन्तर अन्तःपुर के द्वारा जिसे वस्त्राभूषण पहिना कर सुसज्जित किया गया ऐसी सुमति, किसी उत्तम दिन उस समय के योग्य वाहन के द्वारा स्वयंवर सभा में गयी।।78।। जिस प्रकार चन्द्रमूर्ति को देख कर समुद्र भीतर ही भीतर चंचल हो उठता है–लहराने लगता है उसी प्रकार उस सुन्दरी को देख कर धैर्यवान् राजा भी तत्क्षण भीतर ही भीतर–मन में चंचल हो उठे–उसे शीघ्र ही प्राप्त करने के लिये उत्कण्ठित हो गये।।79।। सब ओर से राजाओं के नेत्रों द्वारा जिसके मुख की शोभा लूटी जा रही थी ऐसी उस सुन्दरी से विमान से बैठी बड़ी ऋद्धियों की धारक कोई देवी इस प्रकार कहने लगी।।80।।

हे भद्रे! तुझे स्मरण है–पुष्करार्द्ध द्वीप के भरतक्षेत्र में नन्दन नामका एक उत्तम नगर विद्यमान है।।81।। इन्द्रतुल्य राजा माहेन्द्र उस नगर का रक्षक था तथा प्रताप के द्वारा शत्रुओं को दबाने वाला वही धीर वीर माहेन्द्र हम दोनों का पिता था।।82।। हम दोनों की माता सती अनन्तमती थी। उसने हम दोनों के लिये प्रयत्न पूर्वक दूध पिलाया था।।83।। मैं वहाँ अनन्तश्री नामकी ज्येष्ठ पुत्री हुई थी और तू धनश्री नाम से प्रसिद्ध छोटी पुत्री। भूलो मत, जब तुम तरुण हो गयी थी स्मरण है तुम्हें हम दोनों ने सिद्धगिरी पर नन्द नामक मुनिराज को नमस्कार कर उनसे प्रयत्न पूर्वक प्रोषध व्रत लिया था।।84–85।। एक बार अशोकवाटिका में क्रीड़ा करती हुई हम दोनों को देख त्रिपुरा के स्वामी वज्राङ्गद विद्याधर ने हरण कर लिया।।86।। उसकी वज्रमालिनी स्त्री ने बगल में स्थित तलवार से उस पर प्रहार किया। स्त्री से पराजित हो आकाश से गिरने लगा। उसी समय बीच में उसने हम दोनों को छोड़ दिया।।87।। आकाश से नीचे गिरती हुई हम दोनों को देखकर उसे पश्चात्ताप हुआ। जिसके फलस्वरूप पर्णलघ्वी विद्या के द्वारा उसने हम लोगों को अनुगृहीत किया।।88।। उस विद्या के द्वारा धारण की हुई हम

दोनों धीरे–धीरे भयंकर अटवी में बांसों के समूह से व्याप्त सरोवर के तट पर गिरीं।।89।। उस अत्यन्त भयंकर वन में हम दोनों ने मन से धैर्य का आलम्बन ले सुनिश्चित रूप से आहार और शरीर का त्याग कर सल्लेखना धारण की।।90।। मर कर तू कुबेर की प्रीति बढ़ाने के लिये उसकी रति नामकी प्रिया हुई और मैं महेन्द्र की नवमिका नामक वल्लभा हुई हूँ।।91।। नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा में परस्पर देखकर जो कुछ कहा था उसे यहाँ विषयासक्त चित्त होकर निराकृत मत करो–उसे भूल मत जाओ।।92।। इसीलिये तुम साध्वी को संबोधित करने के लिये यहाँ आयी हूँ। ठीक ही है क्योंकि स्वीकृत बात को बिना कहे कौन भाई ठहरता है ? अर्थात् कोई नहीं।।93।। इसलिये इस अनिष्ट विषय के कारणस्वरूप विवाह से अपने आपको दूर करो मेरे वचन का अनादर मत करो, आत्महितकारी तप करो।।94।। सर्व परिग्रह के त्याग से बढ़कर दूसरा सुख नहीं है और तृष्णा के विस्तार से बढ़कर दूसरा भयंकर नरक नहीं कहलाता है।।95।। बहिन के स्नेह से कातर देवी इस प्रकार के वचन कह कर रुक गयी और उसके वचन सुनकर तथा उस देवी को देखकर वह सुमति मूर्च्छित हो गयी।।96।।

चन्दन तथा पङ्खा आदि के द्वारा शीघ्र ही चेतना को प्राप्त कर सुमति ने उस देवी को हर्ष पूर्वक प्रणाम किया पश्चात् इस प्रकार कहा।।97।। स्वर्गीय सुख का उपभोग करने वाली आपके द्वारा यह जन प्राप्त किया गया अर्थात् स्वर्ग के सुख छोड़कर आप मेरे पास आयीं इसका कारण आपका सौहार्द है मेरे पुण्य फल का उदय नहीं।।98।। खोटे मार्ग में रहने वाली मुझ को आप सन्मार्ग में लगा रही हैं इसके तुल्य मेरा हित करने वाली दूसरी बन्धुता क्या है ? अर्थात् कुछ नहीं।।99।। तुमने जो स्वीकृत किया था उसे मुझे संबोधित कर पूरा किया। अब मैं आत्महितकारी मार्ग में जाती हुई तुम्हारे वचनों को मानूंगी।।100।। विषयरूपी मगरमच्छों से भयंकर संसाररूपी समुद्र में डूबी हुई मुझको

निकाल कर तुमने यह बहुत कुशल अत्यन्त श्रेष्ठ बन्धु स्नेह पूरा किया है।॥01॥ जिस प्रकार महापुरुष कुछ अपेक्षा रखकर दूसरों का उपकार नहीं करते हैं उसी प्रकार तुम्हारी परोपकारिता प्रत्युपकार की वाञ्छा से रहित सुशोभित हो रही है।॥02॥ दुष्परिपाक वाले विषयासङ्ग रूपी पिशाच से जिसका हृदय व्यग्र किया गया है ऐसी मैं यदि आपके कथन का अनादर करती हूं तो मेरा 'सुमति' नाम व्यर्थता को प्राप्त होगा–मेरा सुमति (अच्छी बुद्धिवाली) नाम निरर्थक हो जायेगा।॥03॥ हे आर्ये ! मेरी चिन्ता छोड़ कर अब आप अपने स्थान पर जाईये, इस प्रकार देवी से कह कर सुमति ने उसे हाथ जोड़कर विदा किया।॥04॥ तदनन्तर उस देवी के चले जाने पर सुमति ने अपनी सखियों से कहा–तुम इसे झूँठ मत समझो, देवी ने जो कुछ कहा है वह सत्य है।॥05॥ साधारण प्राणी–अज्ञ मानव, विषयासक्ति के कारण घर में क्लेश उठाकर व्यर्थ ही जीता है वह क्या सत्पुरुषों को इष्ट हो सकता है ? कहो।॥06॥ आओ, सर्वहितकारी धर्म को जानने की इच्छा रखती हुई हम तपोवन को चलें, व्रतशील आदि में प्रयत्न करें तथा आत्महितकारी तप करें।॥07॥ इस प्रकार अपने संपर्क में रहने वाली कन्याओं को धर्म का प्रतिपादन कर उसने भोगाभिलाषा के साथ सभा का स्थान छोड़ दिया। भावार्थ–स्वयंवर सभा से वापिस चली गयी।॥08॥

तदनन्तर अपने भवन जाकर सुमति ने क्रम से माता पिता को प्रणाम किया और 'मैं तप के लिये जाऊँगी' ऐसा उनसे पूछा।॥09॥ माता केवल रो कर चुप बैठी रही, उससे कुछ उत्तर देते नहीं बना। क्योंकि वह बाल्यावस्था से ही उसके चित्त को धर्म से युक्त जानती थी।॥10॥ यह मेरे वंश की पताका है, महाशक्तिशालिनी है यह कह कर पिता ने उसका बहुमान किया–उसे बहुत बड़ा माना और गृह में आसक्त रहने वाले अपने आपको सचमुच ही दीन माना।॥11॥ तदनन्तर जो उसके स्नेह के कारण मन से दुखी हो रहा था और उसके तप ग्रहण

करने की इच्छा से हर्षित हो रहा था ऐसे पिता ने उससे इस प्रकार कहा।।12।। इस निश्चय से तुमने न केवल अपने आपको चाहने योग्य उत्तम अवस्था को प्राप्त कराया है किन्तु अपने सम्बन्ध से इस जन को अर्थात् मुझे भी चाहने योग्य उत्तम अवस्था को प्राप्त कराया है।।13।। इस प्रकार धैर्य के साथ कहकर पिता ने उसे तप के लिये छोड़ दिया। ठीक ही है क्योंकि समीचीन मार्ग में प्रवृत्ति करने वाली कन्या को कौन सत्पुरुष अनुमति नहीं देता है ?।।14।।

जो जैसे वृद्ध थे तदनुसार गुरुजनों को नमस्कार कर वह घर से निकल पड़ी। वाह्य तोरण तक पिता उसे स्नेहसहित पहुंचाने के लिये आया था।।15।। वह तप के लिये जाती हुई जैसी दैदीप्यमान हो रही थी पहले कभी नहीं हुई। वास्तव में भव्यता ही धैर्यशाली जीवों का उत्कृष्ट आभूषण है।।16।। सुव्रता आर्यिका को नमस्कार कर तथा सखीजनों के साथ दीक्षा ग्रहण कर उस समय सुमति नाम और क्रिया–दोनों से सुमति समीचीन बुद्धि की धारक हुई थी।।17।।

इधर भोगों को भोगते हुए धरणेन्द्र तुल्य अनन्तवीर्य ने भी चौरासी लाख पूर्व व्यतीत कर दिये।।18।। जो रोगादि से आक्रान्त नहीं था ऐसा अनन्तवीर्य, किसी समय शय्या पर सोता हुआ कष्ट के बिना मृत्यु को प्राप्त हो गया।।19।। भाई का शोक यद्यपि हृदय में बहुत अधिक विस्तार को प्राप्त था तो भी उसे रोककर धीर वीर बलभद्र–अपराजित तप के लिये इच्छुक हो गये।।20।। तदनन्तर धैर्यशाली अपराजित ने राज्य का गुरुतर भार अरिंजय नामक ज्येष्ठ पुत्र पर रक्खा और अपने आपमें उपशम भाव को स्थापित किया।।21।।

विशुद्ध अभिप्राय वाले सात सौ राजाओं के साथ लक्ष्मी का परित्याग कर तथा यशस्वी और तपस्वी यशोधर मुनि को नमस्कार कर अपराजित वैराग्य के कारण मुनि हो गये।। उत्कृष्ट तपस्या करते हुए

अपराजित मुनि अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे। परीषहों के जीतने से जो अत्यन्त शूर थे ऐसे धीर वीर मुनि घोर तप करने लगे।।22।। सिद्धगिरी पर अत्यन्त कृश शरीर को छोड़कर तथा रत्नत्रय की आराधना कर वे अच्युत स्वर्ग को प्राप्त हुए और वहाँ अविनाशी–दीर्घकाल स्थायी स्थिति से युक्त हो इन्द्रपद को धारण करने लगे। अच्युतेन्द्र ने पहले जिनेन्द्रदेव की पूजा की पश्चात् पुण्योदय से जिनका अवधिज्ञानरूपी नेत्र वृद्धि को प्राप्त हुआ था तथा जो उत्तम संपदाओं के स्वामी हुए थे ऐसे उन अच्युतेन्द्र का देव समूह ने महाभिषेक किया।।23।।

इस प्रकार महाकवि असग द्वारा रचित शान्तिपुराण में अपराजित की विजय का वर्णन करने वाला षष्ठ सर्ग समाप्त हुआ।

सप्तम सर्गः

अथानन्तर वह अच्युतेन्द्र उस अच्युत स्वर्ग में भी निर्बाध, अत्यन्त श्रेष्ठ, और मन के संकल्प मात्र से प्राप्त होने वाले आठ प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त हुआ।॥।। एक समय वह नन्दीश्वर पूजा करने के बाद लौटकर जिनालयों की वन्दना करने की इच्छा से जम्बूद्वीप के सुमेरू पर्वत पर गया।।2।। वहाँ सोलहों जिनालयों की वन्दना और पूजा कर उसने अन्तिम जिनालय में किसी विद्याधर राजा को देखा।।3।। वह इन्द्र भी अनेक भव सम्बन्धी बन्धु के स्नेह से कीलित अपनी दृष्टि को उस विद्याधर राजा पर से खींचने के लिये समर्थ नहीं हो सका।।4।। उसकी दृष्टि को प्राप्त कर जो आन्तरिक स्नेह से भरा हुआ था ऐसे विद्याधर राजा ने भी जाति सम्बन्ध को सूचित करते हुए समान प्रणाम द्वारा उस अच्युतेन्द्र को नमस्कार किया।।5।।

तदनन्तर अच्युतेन्द्र ने देशावधिज्ञान का उपयोग कर उसका और अपना अनेक भवों का सम्बन्ध स्वयं देख लिया।।6।। पश्चात् विद्याधर राजा ने उस अच्युतेन्द्र से इस प्रकार पूछा कि हे स्वामिन्! यद्यपि मैंने आपको देखा नहीं है तो आप दिखे हुए के समान जान पड़ते हैं।।7।। हे प्रभो! जिसके भीतर प्रीति स्फुरित हो रही है ऐसा यह आपका दृष्टिपात सम्बन्ध के बिना मुझ जैसे क्षुद्र पुरुष पर क्यों प्रवर्तता।।8।। मैं भी भीतर प्रवेश कर जो धृष्टता से इस प्रकार कह रहा हूँ उसका कारण पूर्वभव से सम्बन्ध रखता है ऐसा मैं मानता हूँ।।9।। रूपी पदार्थ में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो इन्द्रपद को धारण करने वाले आपके लिये अविदित हो अतः आप मेरी प्रीति का कारण कहिये यह कह कर वह विरत हो गया॥10॥

उस विद्याधर राजा के द्वारा इस प्रकार आग्रह पूर्वक पूछा गया इन्द्र उसका और अपना सम्बन्ध कहने के लिये इस तरह उद्यत हुआ।॥1॥ अथानन्तर इस जम्बूद्वीप में विद्याधरों का निवास भूत विजयार्ध नाम का वह पर्वत है जिसने अपनी लम्बाई से आधे भरत क्षेत्र को नाप लिया है।॥2॥ उस पर्वत की दक्षिण श्रेणी में रथनूपुर नाम का नगर है उसमें ज्वलन जटी नाम का राजा रहता था।॥3॥ उच्च कुलोत्पन्न तथा तेजस्वी जनों के स्वामी जिस राजा को प्राप्त कर समस्त विद्याएँ ऐसी सुशोभित होने लगी थीं जैसी शरद् ऋतु के सूर्य को प्राप्त कर कान्ति अथवा किरणें सुशोभित होने लगती हैं।॥4॥ वह स्वभाव से ही निरन्तर सज्जनों का प्रिय करने वाला, शत्रुओं का भय करने वाला और प्रजाजनों का कल्याण करने वाला था।॥5॥ उसकी वायुवेगा नाम से प्रसिद्ध सुन्दर तथा उच्चकुलीन प्रिया थी। यह उसकी बहुत भारी प्रीति पात्र थी।॥6॥ ज्वलनजटी ने उसमें शत्रुओं को संतप्त करने वाला अर्ककीर्ति नाम का पुत्र उस तरह उत्पन्न किया जिस तरह प्रातः काल पूर्व दिशा में कमलों को अत्यन्त प्रिय (पक्ष में लक्ष्मी के अत्यन्त वल्लभ) सूर्य को उत्पन्न करता है।॥7॥

उसने बाल्यावस्था में भी बाल्यकाल की चपलता चित्त से दूर कर दी थी जिससे ऐसा जान पड़ता था। मानों वह अपने आप में समस्त विद्याओं को अवकाश देना चाहता था।॥8॥ तदनन्तर उन दोनों के (ज्वलनजटी और वायुवेगा के) क्रम से स्वयंप्रभा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। सुन्दर शरीर को धारण करती हुई वह पुत्री साक्षात् चन्द्रमा की प्रभा के समान जान पड़ती थी।॥9॥

तदनन्तर अर्ककीर्ति ने ज्योतीरथ की पुत्री उस ज्योतिर्माला के साथ विवाह किया जो नीरोग थी तथा अन्य ज्योतिर्माला–दूसरी नक्षत्र

पङ्क्ति के समान जान पड़ती थी।।20।। पश्चात् अपना समय आने पर धीरे-धीरे स्वयंप्रभा को यौवन लक्ष्मी प्राप्त हुई। वह यौवन लक्ष्मी ऐसी जान पड़ती थी मानों कौतुक वश उसके विविध कलाकौशल को देखने के लिये ही आयी हो।।21।। एक समय पिता उसे नव यौवन से सम्पन्न देख, मन्त्रियों के साथ उसके योग्य वर खोजने के लिये व्यग्र हुआ।।22।। तदनन्तर खिले हुए कमल के समान जिसका मुख था ऐसा राजा किसके साथ विवाह किया जाये और किसके साथ न किया जाये ऐसा संशय कर निर्णय के लिये उस पुरोहित पर निर्भर हुआ जो अत्यन्त स्नेही तथा ज्योतिष शास्त्र के जानने वालों का सम्मान पात्र था।।23।। वह राजा की घनिष्ठता देख उसके अभिप्राय को जानता हुआ इस प्रकार कहने लगा। इस भरत क्षेत्र में सुरमा नाम से प्रसिद्ध देश है।।24।। जिस देश में पोदनपुर नाम का नगर है। उत्तम कीर्ति का भण्डार प्रजापति नाम से प्रसिद्ध राजा उस नगर का रक्षक है।।25।। जिस प्रकार दिग्गज दो मनोहर मद रेखाओं को धारण करता है। उसी प्रकार वह भद्र प्रकृति वाला राजा अपने से पृथक् न रहने वाली दो सुन्दर स्त्रियों को धारण करता था।।26।। पहली स्त्री जयावती और दूसरी मृगावती नाम की थी। गुणों से परिपूर्ण ये दोनों स्त्रियाँ पति को वश कर सुशोभित हो रही थीं।।27।। जयावती के विजय नाम का पुत्र हुआ जो सत्य तथा प्रिय वचन बोलने वाला था, अजेय था और विजय लक्ष्मी का तिलक था।।28।। पश्चात् मृगवती ने त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र प्राप्त किया जो विजय से सहित था, अपरिमित यश का स्वामी था तथा लक्ष्मी का पति था।।29।। सिंह से उपद्रुत देश का कल्याण करने वाले राजा प्रजापति ने सिंह के समान गर्जना करने वाले जिस नर श्रेष्ठ के द्वारा सिंह का नाश कराया था।।30।। समस्त विद्याधरों को नम्रीभूत करने वाला यह अश्वग्रीव चक्रवर्ती के छोटे पुत्र त्रिपृष्ठ के द्वारा युद्ध में मारा

जायेगा इसलिये उस महान् आत्मा त्रिपृष्ठ के लिये पुत्री देओ। इस प्रकार विद्याधरों के राजा ज्वलन जटी से प्रयोजन की बात कह कर पुरोहित चुप हो गया।।31–32।।

ज्वलनजटी ने इन्दु नामक विद्याधर के मुख से राजा प्रजापति के पास इस सम्बन्ध को पूर्ण करने का समाचार कहलाया। जब राजा प्रजापति ने भी स्वीकृत कर लिया तब वह सेना सहित आकाश मार्ग से चल पड़ा।।33।। उसने पोदनपुर पहुंच कर शुद्ध दिन में त्रिपृष्ठ के लिये शुभ लक्षणों से युक्त स्वयंप्रभा विधि पूर्वक प्रदान कर दी।।34।। इधर अश्वग्रीव भी स्वयंप्रभा को चाहता था परन्तु जब उसे नहीं मिली तब वह क्रोध से विद्याधर राजाओं के साथ शीघ्रता करता हुआ युद्ध के लिये उद्यम करने लगा।।35।। तदनन्तर विजयार्ध पर्वत के निकट ही रथावर्त नामक पर्वत पर भूमिगोचरी राजाओं का विद्याधर के साथ घोर युद्ध हुआ।।36।। उस अश्वग्रीव को मार कर त्रिपृष्ठ नारायण हुआ और विजय से जिसका यश रूपी धन बढ़ रहा था ऐसा विजय बलदेव हुआ।।37।। वे दोनों वीर चक्र के द्वारा अर्ध भरत क्षेत्र को वश कर स्वर्गीय सुखों के समान मनोहर सुखों का उपभोग करने लगे।।38।।

उधर जिसने समस्त शत्रुओं को नष्ट कर दिया था तथा जिसका सम्बन्ध प्रसिद्ध था ऐसा चक्रवर्ती का मामा ज्वलनजटी समस्त विजयार्ध पर्वत पर शासन करता हुआ सुशोभित हो रहा था।।39।। एक दिन वह भव्यजीवों को आनन्द देने वाले अभिनन्दन नामक माननीय मुनि के दर्शन कर तथा धर्म सुन कर हृदय से मुमुक्षु–मोक्ष प्राप्त करने का इच्छुक हो गया।।40।। तदनन्तर उसने उसी क्षण अपनी विशेषज्ञता को प्रकट करते हुए के समान राज्य लक्ष्मी को छोड़कर तपो लक्ष्मी को ग्रहण कर लिया।।41।। पश्चात् राज्य भार को धारण करने वाले अर्ककीर्ति

ने ज्योतिर्माला नामक स्त्री से अमिततेज नामक पुत्र को उत्पन्न किया।।42।। वह मैं न केवल विद्याधर राजा का पुत्र होने से परमेश्वर–उत्कृष्ट सामर्थ्यवान् हुआ था किन्तु विद्याओं को स्वीकृत करने से भी परमेश्वर हुआ था।।43।।

तदनन्तर हमारे माता पिता ने जिसकी आकृति अत्यन्त सुन्दर थी, और जिसके नेत्रों की कान्ति उत्तम पुतलियों से सहित थी ऐसी सुतारा नाम की कन्या उत्पन्न की।।44।। पश्चात् स्वयंप्रभा ने श्रीविजय नामक ज्येष्ठ पुत्र, विजय नामक लघु पुत्र और ज्योतिप्रभा नाम की एक पुत्री क्रम से प्राप्त की।।45।। तदनन्तर जो धर्म अर्थ और काम इस त्रिवर्ग में पारंगत थे तथा भव्यत्व भाव से जिनका हृदय प्रेरित हो रहा था ऐसे प्रजापति महाराज तप के लिये घर से निकले।।46।। पिहितास्रव मुनि को नमस्कार कर तथा आत्महितकारी तप को स्वीकृत कर शुक्लध्यान से जिसकी आत्मा विशुद्ध हो गयी थी ऐसे प्रजापति मुनिराज ने मुक्ति प्राप्त की।।47।।

तदनन्तर स्वयंप्रभा की पुत्री ज्योतिप्रभा कन्या ने अर्ककीर्ति के पुत्र अमिततेज को ग्रहण किया और सुतारा ने स्वयंवर में श्रीविजय को अपना पति बनाया।।48।। चिरकाल बाद त्रिपृष्ठ मरण को प्राप्त हुआ और विजय ने भी तप तपकर केवलज्ञान रूप सम्पदा को प्राप्त किया।।49।। तदनन्तर अर्ककीर्ति ने मुझ अमिततेज पुत्र के लिये राज्य सौंपकर तथा अभिनन्दन गुरु को नमस्कार कर दीक्षा धारण कर ली।।50।। तदनन्तर संपत्ति से परिपूर्ण पिता का पद प्राप्त कर समस्त राजाओं को नम्रीभूत करते हुए तुमने अपना नाम सार्थक किया।।51।। एक दिन किसी आगन्तुक ब्राह्मण ने श्रीविजय को सिंहासन पर स्थित देख एकान्त में आसन प्राप्त कर इस प्रकार कहा।।52।। आज से सातवें

दिन पोदनपुर नरेश के मस्तक पर जोर से गरजता हुआ वज्र वेगपूर्वक आकाश से गिरेगा।।53।। इतना कह कर जब वह चुप हो गया तब अमिततेज ने उससे स्वयं पूछा कि तुम कौन हो ? किस नाम के धारक हो और तुम्हें कितना ज्ञान है ?।।54।।

इस प्रकार राजा के द्वारा स्वयं पूछे गये, धीर बुद्धि वाले उस आगन्तुक ब्राह्मण ने कहा कि सिन्धु देश में एक पद्मिनीखेट नाम का सुन्दर नगर है।।55।। वहां से मैं तुम्हारे पास यहाँ आया हूँ अमोघजिह्व मेरा नाम है, मैं विशारद का पुत्र हूँ तथा ज्योतिष ज्ञान का पण्डित हूँ।।56।। इस प्रकार अपना परिचय देकर बैठे हुए उस ब्राह्मण को राजा ने विदा किया।। पश्चात् मन्त्रियों से वज्र से अपनी रक्षा का उपाय पूछा।।57।। तदनन्तर मन्त्रियों ने बहुत सारे रक्षा के उपाय बतलाये परन्तु उन उपायों का खण्डन करने की इच्छा रखते हुए मतिभूषण मन्त्री ने इस प्रकार एक कथा कही।।58।।

गिरिराज के निकट एक कुम्भकट नाम का नगर है। उसमें चण्डकौशिक नाम वाला एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था।।59।। 'सोमश्री' इस नाम से प्रसिद्ध उसकी स्त्री थी। उसने भूतों की आराधना कर एक मुण्डकौशिक नाम का पुत्र प्राप्त किया।।60।। कुम्भ नाम का राक्षस उस पुत्र को खाना चाहता था अतः उससे रक्षा करने के लिये ब्राह्मण ने वह पुत्र भूतों को दे दिया और भूतों ने उसे गुहा में रख दिया।।61।। परन्तु वहां भी अकस्मात् आये हुए एक भयंकर अजगर ने उस पुत्र को खा लिया अतः ठीक ही है क्योंकि धर्म को छोड़ कर मृत्यु से प्राणियों की रक्षा करने के लिये कौन समर्थ है ?।।62।। इसलिये शान्ति को छोड़ कर रक्षा का अन्य उपाय नहीं है। फिर भी हम इनके पोदनपुर के स्वामित्व को दूर कर दें अर्थात् इनके स्थान पर किसी अन्य को राजा घोषित कर दें।।63।।

इस प्रकार कह कर जब मतिभूषण मन्त्री चुप हो गया तब प्रजा ने ताम्र का कुबेर बना कर उस पर राज्य स्थापित कर दिया। और राजा जिनालय में स्थित हो गया।।64।। सातवाँ दिन पूर्ण होते ही राजा कुबेर के मुकुट विभूषित मस्तक पर आकाश से वज्र गिरा।।65।। तदनन्तर श्रीविजय ने उस अमोघचिह्न नामक आगन्तुक ब्राह्मण के लिये उसका मन चाहा पद्मिनीखेट नगर ही दे दिया।।66।।

किसी समय श्रीविजय माता से दो विद्याएं लेकर वह सुतारा के साथ क्रीड़ा करने के लिये ज्योतिर्वन गया।।67।। उसके चले जाने पर उत्पातों के देखने से व्याकुल नागरिक जनों से युक्त पोदनपुर में आकाश से कोई विद्याधर आया।।68।। क्रम से राजद्वार में जाकर उसने अपना परिचय दिया पश्चात् राजसभा में प्रवेश किया।। वहाँ नमस्कार कर उसने स्वयंप्रभा को देखा।।69।। स्वयंप्रभा के दृष्टिपात से बताये हुए आसन पर सुख पूर्वक बैठा। पश्चात् अवसर पा कर उसने इस प्रकार कहना शुरु किया।।70।। श्रीविजय के लिये कल्याणकारी यह कुछ समाचार सुनिये। मैं महान् आत्मा संभिन्न का दीप्रशिख नाम का पुत्र हूँ।।71।। सुख से आराधना करने योग्य अमिततेज की पिता के साथ आराधना कर जब मैं अपने नगर की ओर जा रहा था तब मैंने रोने का शब्द सुना।।72।। तदनन्तर विमान को और उसमें रोती हुई स्त्री को देखा। वह स्त्री बार-बार भाई तथा पिता का नाम लेकर विलाप कर रही थी।।73।। पश्चात् स्वामी का नाम सुन कर तथा स्त्री पर करुणा उत्पन्न होने के कारण मैं युद्ध करने की इच्छा से पिता के साथ विमान के आगे खड़ा हो गया।।74।। जब तक शत्रु शस्त्र नहीं ग्रहण करता है तब तक तुम्हारी वधू ने विमान के प्राङ्गण में खड़ी हो कर मुझसे यह वचन कहा।।75।। ज्योतिर्वन में विद्या से मेरे पति को छल कर यह अशनिघोष मुझे बलपूर्वक अपनी नगरी को लिये जा रहा है।।76।। मेरे

पति की रक्षा करो इस प्रकार कह कर उसने शत्रु से आशङ्कित हो मुझे देखाऔर मैं तत्काल वहाँ से लौट पड़ा।।77।। बात यह हुई कि सुतारा का रूप धारण करने वाली विद्या कुक्कुट सर्प के विष के बहाने झूठ मूठ ही मर गयी। उसे सचमुच ही मृत जान कर राजा श्रीविजय बहुत व्याकुल हुआ तथा उसे लेकर उसके साथ चिता पर आरूढ़ हो गया (इसी के बीच अशनिघोष वास्तविक सुतारा को हर कर ले गया) मेरे पिता ने उस विद्या को ललकारा जिससे वह कहीं भाग गयी।।78–79।। पश्चात् आश्चर्य चकित हो राजाधिराज श्रीविजय ने 'यह क्या है' इस तरह मेरे पिता से पूछा। संभिन्न ने सुतारा का समाचार उससे कहा।।80।। सुतारा का हरण सुन कर राजाधिराज श्रीविजय मुझे आपके पास भेजकर संभिन्न के साथ रथनूपुर गये हैं।।81।। इस प्रकार शीघ्र ही सुतारा का समाचार सुना कर दीप्रशिख विरत हो गया। स्वयंप्रभा भी उसी के साथ रथनूपुर गयी।।82।।

उस नगर को प्राप्त कर स्वयंप्रभा ने आकाश से राजभवन में प्रवेश किया। वृद्ध स्त्री पुरुष पहिचान कर उसे देखने लगे।।83।। वहाँ उसने सुतारा के विरह से जो म्लान हो रहा था तथा प्रातः काल के चन्द्रमा के समान जान पड़ता था ऐसे पुत्र को और उठ कर नमस्कार करने वाले राजा को देखा।।84।। उन दोनों के आगे क्षण भर आसन पर बैठ कर तथा वधू के स्नेह से पड़ते हुए आँसुओं को भीतर रोक कर उसने इस प्रकार कहा।।85।। यह आप जैसे महान् आत्माओं के उद्विग्न होने का समय नहीं है। शत्रु का स्थान जान लेने पर भी आप लोग निश्चय क्यों नहीं कर रहे हैं।।86।। इस प्रकार सभा के बीच में यह वचन कह कर विरत हो गयी। ठीक ही है क्योंकि कुलीन स्त्रियाँ भी पराभव को सहन नहीं करती हैं।।87।।

तदनन्तर विद्याधर नरेश ने राजा श्रीविजय के लिये हेतिनिवारिणी–शस्त्रों को रोकने वाली विद्या के साथ बन्ध विमोचिनी–बन्ध से छुड़ाने वाली विद्या दी।।88।। तदनन्तर जो विद्या सिद्ध कर चुका था और युद्ध के लिये शीघ्रता कर रहा था ऐसे श्रीविजय को उसने अपने पुत्रों के साथ शत्रु के सन्मुख भेजा।।89।। और स्वयं वह महा ज्वाला नामक विद्या को सिद्ध करने के लिये सहस्ररश्मि के साथ ह्रीमन्त पर्वत पुर गया॥90॥ वहाँ अपने धैर्य से शीघ्र ही विद्या सिद्ध कर उसी विद्या से अनुगत होता हुआ वह वहाँ से शत्रु की चञ्चा नगरी गया।।91।। अशनिघोष बहुरूपिणी और भ्रामरी विद्या के द्वारा अपने आपको करोड़ो रूप बना कर तथा सब ओर से आकाश को व्याप्त कर राजा श्रीविजय के साथ युद्ध कर रहा था। यह देख विद्याधरों के राजा ने अपनी विद्या से उसकी विद्या छेद दी।।92–93।। जो दूसरों के लिये अवध्य था–दूसरे जिसे छेद नहीं सकते थे ऐसे विद्यास्त्र को देख कर अशनिघोष, यद्यपि दूसरों को जीतने वाला था, शूर था और अन्य शूरवीरों को भय उत्पन्न करने वाला था तो भी भयभीत हो गया।।94।। तदनन्तर शरीर मात्र ही जिसका शेष रह गया था और विद्यारूपी विभूति जिसकी नष्ट हो गयी थी वह अशनिघोष ताराओं से रहित प्रातःकाल के आकाश के समान हो गया।।95।। अन्त में वह अपनी रक्षा करने की इच्छा से वेगपूर्वक भागा। अथवा चित्त स्वभाव से ही चंचल होता है फिर पापी मनुष्य का चित्त ही है कितना ?।।96।। घात करने की इच्छुक तथा भयंकर रूप धारण करने वाली विद्या ने उसका पीछा किया।। इसी तरह विद्याधर राजा भी सैनिकों के साथ वेग से उसके पीछे दौड़ा।।97।। जब उसने रक्षा का दूसरा उपाय नहीं देखा तब वह नासिक्य नगर के बाहर स्थित 'गजध्वज' पर्वत पर जा पहुँचा।।98।।

वहाँ अनन्त चतुष्टय से सहित तथा भव्य जीवों के हितकारक केवली भगवान् को परम भक्ति से नमस्कार कर वह शीघ्र ही विशुद्ध

हृदय हो गया। उन भगवान् के प्रभाव से वह न केवल दुर्बार शक्ति के धारक विद्याधर राजा से निर्भय हुआ किन्तु संसार से भी निर्भय हो गया।।99।। जो विद्याधर राजा चिरकाल से आग्रह पूर्वक उनके मार्ग में लग रहा था वह, राजा भी श्रीविजय के साथ बलभद्र को देख कर शीघ्र ही संतुष्ट हो गया जिस प्रकार पाषाण प्राप्त करने की इच्छा से घूमने वाला मनुष्य बीच में दैदीप्यमान मणि को प्राप्त कर प्रसन्न हो जाता है उसी प्रकार बीच में ही बलभद्र को प्राप्त कर विद्याधर राजा की बुद्धिरूप संपदा उन केवली भगवान् की दया से अलंकृत हुई के समान निर्मल हो गयी।।42।।

इस प्रकार महा कवि असग द्वारा विरचित शान्तिपुराण में अच्युतेन्द्र का विद्याधर राजा को संबोधन देना तथा अमिततेज, श्री विजय और सुतारा का वर्णन करने वाला सातवां सर्ग पूर्ण हुआ।।7।।

अष्टम सर्गः

अथानन्तर भव्य जीवों के सेवनीय तथा अव्याबाध और निर्मल लक्ष्मी से युक्त उन केवली जिनेन्द्र को विद्याधरों के राजा अमिततेज तथा राजा अशनिघोष ने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया।।1।। अन्तःकरण की कलुषता का नाश हो जाने से जिनके नेत्र निर्मल हो गये थे ऐसे वे दोनों नम्रीभूत होकर भक्ति पूर्वक सभा में प्रविष्ट हुए।।2।। तदनन्तर स्वयंप्रभा सुतारा को लेकर वेग से वहाँ आ पहुँची और केवली भगवान को आदर सहित नमस्कार कर बैठ गयी।।3।। तदनन्तर धर्मानुराग से जिसका बैर दूर हो गया है ऐसे विजयार्धपति–अमिततेज ने इन्द्र पूजित विजय केवली से धर्म पूछा।।4।।

तदनन्तर उन विजय केवली ने कहा कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र धर्म है। यह धर्म ही प्राणियों के लिये कल्याणकारी है इससे अतिरिक्त अन्य नहीं।।5।। परमार्थ से तत्त्वार्थ में श्रद्धा होना सम्यग्दर्शन है। फिर वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगम के भेद से दो प्रकार से विभक्त है।।6।। जीवादि पदार्थ ही सात तत्व हैं। ऐसा गणधरादिक देवों ने कहा है। इनमें ज्ञानादि गुण रूप लक्षण से युक्त जीव अनादि निधन हैं।।7।। समस्त पदार्थों के सद्भाव को कहने वाला गुण ज्ञान कहलाता है और समस्त पाप पूर्ण क्रियाओं का अभाव हो जाना चारित्र माना गया है।।8।। मिथ्यात्व अविरति योग और कषाय बन्ध के कारण हैं। कर्मरूप संसार चार गतियों से सहित है।।9।। हिंसा, असत्य, चौर्य, मैथुन और परिग्रह से सर्वदेश अथवा एक देश निवृत्ति होना व्रत कहलाता है।।10।। मनोगुप्ति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण समिति, ईर्या समिति तथा आलोकितपान भोजन ये अहिंसा व्रत की रक्षा के लिये पांच भावनाएँ कही गयीं हैं।।11।। हास्यप्रत्याख्यान, लोभप्रत्याख्यान, अक्षमा (क्रोध) प्रत्याख्यान, भयप्रत्याख्यान और आगम के अनुसार वचन

बोलना ये सत्यव्रत की भावनाएं हैं ऐसा अर्थ– गणधरादिक देव कहते हैं।।2।।परोपरोधाकरण, शून्यागारावास, विमोचितावास, भैक्ष्यशुद्धि और अपनी वस्तु में अभेद अर्थात् सधर्माविसंवाद ये पांच अस्तेयव्रत की भावनाएं हैं।।3।। स्त्रीकथा त्याग, स्त्री–आलोकन त्याग, अतीतभोगस्मृति त्याग, अङ्गसंक्रिया–त्याग और वृष्यरस त्याग–कामोद्दीपक गरिष्ठ भोजन त्याग ये पांच ब्रह्मचर्यव्रत की भावनाएं हैं।।4।। पांचों इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट विषयों में राग द्वेष छोड़ना ये पांच परिग्रह त्यागव्रत की भावनाएं जानने योग्य हैं।।5।। पांच महाव्रत मुनियों के ही आभूषण हैं। और ये पांच अणुव्रत गृहस्थों के आभूषण हैं।।6।। दिग् देश और अनर्थदण्डों–मन, वचन काय की निरर्थक प्रवृत्तियों से निवृत्ति होना गुणव्रत है। यह गुणव्रत तीन प्रकार का है तथा अपना हित चाहने वाले श्रावकों के द्वारा पालन करने के योग्य हैं।।7।।

शिक्षा व्रत चार हैं। उनमें विशुद्ध हृदय होकर शक्ति के अनुसार काल का नियम लेकर स्थिर होना सामायिक व्रत है।।8।। चारों पर्वों में चार प्रकार के आहार का त्याग कर जो प्रवर्तना है वह प्रोषधोपवास कहलाता है।।9।। परिभोग और उपभोग की वस्तुओं में नियम पूर्वक प्रवर्तना अर्थात् उनका परिमाण निश्चित करना परिभोगोपभोग–परिमाणव्रत कहलाता है।।20।। मद्य मांस और मधु का त्याग प्रयत्न पूर्वक करना चाहिये तथा समय पर संयमी जनों के लिये दान देना अतिथि संविभाग कहा गया है।।21।। इस प्रकार सर्व हितकारी जिनेन्द्र भगवान् संक्षेप से दो प्रकार का धर्म कह कर विरत हो गये। भगवान् के द्वारा कहा हुआ वह धर्म भव्यजीवों को अत्यन्त प्रिय था।।22।। विद्याधरों के राजा अमिततेज ने गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के साथ अणुव्रतों को स्वीकृत किया तथा उनके पहले हृदय में सम्यग्दर्शन को धारण किया।।23।।

तदनन्तर व्रतों की प्राप्ति से संतुष्ट होनेवाले विद्याधर राजा ने कौतुक वश केवली जिनेन्द्र से पूछा कि अशनिघोष ने सुतारा का हरण किया, इसमें कारण क्या है ?।।24।। पश्चात् वचनों के स्वामी जिनेन्द्र

भगवान् मनुष्य देव और धरणेन्द्रों से भरी हुई सभा को संविभाजित करते हुए इस प्रकार के सर्वभाषामय वचन कहने लगे।।25।।

इस जम्बूद्वीप के दक्षिण भरत क्षेत्र में मलय नाम का बड़ा देश है। उसमें रत्नपुर नगर है।।26।। अपने देश में क्षुद्र शत्रुओं को चुन–चुन कर नष्ट करने वाला तथा यश रूपी महाधन से सहित श्रीषेण राजा उस नगर का रक्षक था।।27।। उसकी सिंहनन्दा नाम की प्रिय धर्मपत्नी थी। दूसरी स्त्री अनिन्दिता इस नाम से प्रसिद्ध थी। यह नाम से ही नहीं शील से भी अनिन्दिता–प्रशंसनीय थी।।28।। जिसका उदय–ऐश्वर्य (पक्ष में उद्गमन) प्रतिदिन दिखायी दे रहा था ऐसा वह राजा अत्यन्त रक्त–अनुराग से सहित (पक्ष में लालिमा से सहित) उन दोनों स्त्रियों से ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा संध्याओं से सूर्य सुशोभित होता है।।29।। राजा की उन देवियों में इन्द्र और उपेन्द्र नामक दो पुत्र हुए जो ऐसे जान पड़ते थे मानों उसके मूर्तिमन्त मान और पराक्रम ही हों।।30।। बाल क्रीड़ा करते–करते उन दोनों को विद्याभ्यास हो गया था। यह ठीक ही है क्योंकि बाल्यकाल में विद्या ग्रहण करने वालों की भव्यता–श्रेष्ठता मालूम होती है।।31।। जिनका निर्मल शरीर अच्छी तरह भर गया था, जो महा शक्तिशाली थे तथा जिन्होंने शत्रु के युद्धों को जीता था ऐसे वे इन्द्र और उपेन्द्र समय पर यौवन को प्राप्त कर अत्यंत सुशोभित हो रहे थे।।32।।

इन्द्र ने युवराज पद प्राप्त कर विवाह किया और श्रीमती नामक स्त्री में चन्द्रमा के समान चन्द्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया।।33।। नय रूपी संपदा के द्वारा पुत्र और पौत्रों के लिये हितकारी लक्ष्मी को प्राप्त करने वाला राजा श्रीषेण, चिरकाल तक सुराज्य–उत्तम राज्य सम्बन्धी सुखों का उपभोग करता रहा।।34।।

अन्य समय द्वारपाल ने जिसकी सूचना दी थी ऐसी भय से व्याकुल कोई तरुणा स्त्री 'रक्षा करो रक्षा करो' इस प्रकार राजा से बार बार कहती हुई उनके पास पहुँची।।35।। तदनन्तर राजा ने उससे स्वयं पूछा कि जब अन्याय को नष्ट करने वाला मैं न्यायानुसार पृथिवी की

रक्षा कर रहा हूँ तब तुझे किससे भय है ?।37।। अश्रुपात के कारण नीचे खिसकते हुए अंचल को दाहिने हाथ से रोकती हुई वह गद्गद कण्ठ से इस प्रकार के वचन कहने लगी।।38।।

हे राजन्! राजाओं में श्रेष्ठ आपका जो प्रिय ब्राह्मण है। सत्य से सुशोभित उस सात्यकि की मैं पुत्री हूँ।।39।। उसकी जम्बूमती नामकी पतिव्रता धर्मपत्नी मेरी माता है। इस प्रकार आप मुझे सत्यभामा नामकी कुल बालिका जानिये।।40।। कपिल नामक विदेशीय विद्वान् ने ब्राह्मणोचित कार्यों से मेरे भोले–भाले पिता को धोखा देकर मुझे विवाह लिया।।41।। परन्तु उसके दुराचार से मैंने जान लिया कि यह निश्चित नीच कुल में उत्पन्न हुआ है क्योंकि आचार ही मनुष्यों के अच्छे और बुरे कुल को कह देता है।।42।। तदनन्तर कुछ समय बाद कोई वृद्ध ब्राह्मण पथिक जो जीर्ण शीर्ण कथरी से युक्त था, उस कपिल को लक्ष्य कर मेरे घर के आंगन में आया।।43।। संभ्रम में पड़े हुए कपिल ने अगवानी आदि के द्वारा पहले उसकी सेवा की पश्चात् मुझसे कहा कि यह तुम्हारा श्वसुर है।।44।। समीचीन क्रियाओं को करने वाला वह वृद्ध ब्राह्मण, अतिथि के योग्य सत्कार प्राप्त कर कुछ दिन तक स्वतन्त्रता पूर्वक हर्ष से मेरे घर पर रहा।।45।। सेवा शुश्रूषा के द्वारा जब मैंने उसे विश्वास को प्राप्त करा लिया तब एक दिन एकान्त में नमस्कार कर विनय पूर्वक उससे पूछा।।46।। यद्यपि आपका यह पुत्र आपके रूप का अनुकरण करता है तथापि असदाचार से यह मेरे मन को संदेह युक्त करता रहता है।।47।। 'आप वेद पाठी हैं अतः जो बात जैसी है वैसी कहिये।' इस प्रकार मैंने उससे कहा। साथ ही धन के द्वारा भी उसे अनुकूल किया। पश्चात् उसने इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया।।48।।

मगध देश के अचल ग्राम में मैं धरणीजट नाम से प्रसिद्ध हूँ। परम्परा से आयी हुई वृत्ति तथा ब्राह्मणों की क्रिया से सहित हूँ।।49।। भद्र परिणामों से युक्त यशोभद्रा मेरी स्त्री थी। उसके दो लड़के थे–श्रीभूत और नन्दिभूति।।50।। यह कपिल दासी का पुत्र था और अपना ही दास

था। इसने अपनी बुद्धि से ही समस्त वाङ्मय को पढ़ लिया तथा गर्व से सुशोभित हो गया।51।। इस प्रकार मेरे लिये उसकी उत्पत्ति कह कर वह ब्राह्मण अपने देश को चला गया। जाते समय उसने चोरों के भय से अपना वही जीर्ण वस्त्र पहिन लिया था।52।। वह नीच कुली कपिल मेरे न चाहने पर भी मुझे भोगने की इच्छा करता है। इसलिये उस दुराचारी से मेरी रक्षा करने के लिये आप जगत्पति ही समर्थ है।53।। इस प्रकार राजा से निवेदन कर शुद्ध चारित्र को धारण करने वाली सत्यभामा भी उनके अन्तःपुर में शरण को प्राप्त हो गयी।54।।

तदनन्तर अनेक नगरवासी जिसके साथ थे जो मधु–वसन्तऋतु के साथ सरस था, पृथ्वी के भार को धारण करने वाला था तथा अपनी स्त्रियों से सहित था ऐसा राजा श्रीषेण वसन्तऋतु में नगर के निकट वैभार पर्वत पर क्रीड़ा कर रहा था।55।। वहाँ उसने चारित्र से संपन्न तथा भव्य जीवों से पूजित आदित्य यश नामक मुनिराज को देखकर उन्हें नमस्कार किया। पश्चात् हे भगवान्! मेरा हित कैसे हो सकता है ? यह पूछा।56।। तदनन्तर व्रत पालन करने में असमर्थ उस राजा के लिये तप के सागर तथा धर्म के ज्ञाता उन मुनिराज ने दानधर्म का उपदेश दिया।57।। शुभ अभिप्राय से युक्त पात्र दान के फल का अनुभव कर अत्यन्त निकटवर्ती काल में सम्यक्त्व को प्राप्त होओगे॥58॥ इस प्रकार वहाँ सुनने योग्य उपदेश को सुनकर तथा नमस्कार के द्वारा उन मुनिराज की पूजा कर पात्र दान के लिये उत्सुक होता हुआ राजा श्रीषेण नगर को चला गया।59।। अत्यन्त तीव्र कषाय का उदय न होने से 'यह सुधर्म है–राजा का कर्तव्य है' यह समझ कर न्यायपूर्वक पृथिवी का पालन करते हुए उसने दीर्घ काल व्यतीत कर दिया।।60।।

तदनन्तर किसी समय दो मास का उपवास करने वाले चारण ऋद्धि के धारक अमितगति और आदित्यगति नाम के दो मुनियों ने आहार के समय उसके भवन में प्रवेश किया।।61।। हर्ष से भरे हुए राजा श्रीषेण ने आगे जाकर नमस्कार आदि के द्वारा उनकी पूजा की, पश्चात्

दोनों स्त्रियों के साथ प्रयत्न पूर्वक उन्हें आहार कराया।।60।। जिसका मन प्रसन्न था जो कल्याण को चाह रही थी ऐसी सत्यभामा ने भी कल्याणकारी उस दान को देख कर उसकी अनुमोदना की।।63।। आकाश में देवों द्वारा विस्तारित पञ्चाश्चर्यों ने उस राजा की आगे होने वाली सम्पत्ति की परम्परा को सूचित किया था।।64।।

तदनन्तर राजा श्रीषेण के ज्येष्ठ पुत्र इन्द्र की महादेवी के साथ कान्ति से तीनों जगत् को जीतने वाली वसन्त सेना नाम की वेश्या भेंट स्वरूप आयी थी।।65।। यद्यपि इन्द्र ने उसे स्वीकृत कर लिया था तो भी काम से आतुर उपेन्द्र ने सौभाग्य से उसे अपने वश कर लिया और कुछ उपाय न देख उसके साथ विवाह कर लिया।।66।। कामातुर उपेन्द्र ने पिता के भी वचनों को कुछ नहीं गिना सो ठीक ही है क्योंकि कामरूप पिशाच के द्वारा ग्रस्त मनुष्य के द्वारा विनय छोड़ दी जाती है।।67।। जिन्होंने भाईचारे को छोड़ कर मर्यादा तोड़ दी है ऐसे उन दोनों राज पुत्रों में स्त्री के हेतु भयंकर युद्ध होने लगा।।68।। उसी समय युद्ध के मध्य तलवार खींच कर खड़े हुए उन दोनों भाईयों के बीच में आकाश से आकर कोई विद्याधर खड़ा हो गया और इस प्रकार कहने लगा।।69।। प्रहार मत करो, प्रहार मत करो, यह वेश्या पूर्व भव में तुम दोनों की बहिन थी। इसलिये अब वैर विरोध छोड़ कर उसकी कथा सुनो।।70।।

द्वितीय द्वीप–धातकी खण्ड द्वीप में पूर्व मेरू के पूर्व विदेहों में धन धान्य से परिपूर्ण पुष्कलावती नाम का देश है।।71।। उस देश के मध्य में विद्याधरों का निवास भूत विजयार्ध पर्वत सुशोभित है। उसी विजयार्ध पर्वत पर आदित्यपुर नाम का उत्तम नगर विद्यमान है।।72।। सुकुण्डल नामक मेरे पिता उस नगर के राजा थे। अमिता मेरी माता थी और मैं उन दोनों का मणिकुण्डल नामक पुत्र हूँ।।73।। जिसने समस्त विद्याएँ सिद्ध कर ली थीं ऐसे मुझे राज्य भार में नियुक्त कर मुक्ति की इच्छा करने वाले पिता ने तप का भार धारण कर लिया–मुनि दीक्षा ले ली।।74।। तदनन्तर एक समय उस विजयार्ध पर्वत से उतर कर क्रीड़ा

करने की इच्छा से स्वेच्छानुसार पृथिवी पर विहार करता हुआ मैं पुण्डरीकिणी नगरी पहुँचा।।75।। उसके उद्यान में विराजमान, विश्वदर्शी तथा देवों के माननीय अमित कीर्ति नामक मुनिराज को मैंने देखा।।76।। उन्हें नमस्कार कर मैंने हर्ष से अपना पूर्वभव पूछा। तदनन्तर वचन कला के पारगामी मुनिराज स्पष्ट रूप से कहने लगे।।77।।

निर्मल चारित्र से युक्त धर्म रूप सम्पत्ति के द्वारा तुम सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुए थे। वहाँ तुमने अणिमा महिमा आदि आठ ऋद्धियों से युक्त देव पद का अनुभव किया था।।78।। उस समय तुम्हारे साथ रहने वाले जो दो देव थे वे पूर्वभव में तुम्हारी पुत्रियाँ थीं। इनके सिवाय काम रोग से पीड़ित चित्तवाली एक अन्य देवाङ्गना भी थी। वह भी तुम्हारी पुत्री थी।।79।।

तदनन्तर मैंने मुनिराज से पूछा कि हे नाथ ! वे सब मेरी पुत्रियाँ कैसे थीं ? और यह मैं कहाँ से आया हूँ ? हे ज्ञानरूप नेत्र के धारक! मुझे बताइये।।80।। मुनिराज मेरा सौधर्म स्वर्ग के भव से पूर्व का भव इस प्रकार कहने लगे।। पूर्व और पश्चिम मेरू पर्वतों से सहित पुष्कर नाम का द्वीप है। उसके पश्चिम मेरू पर्वत के पश्चिम विदेहों में वीतशोका नगरी है जो शोक रहित मनुष्यों से व्याप्त है।।81-82।। सार्थक नाम वाला चक्रायुध नाम का राजा उस नगरी का शासन करता था। उसकी विद्युन्मती और कनकश्री नामकी दो स्त्रियाँ थीं।।83।। विद्युन्मती ने पद्मावती नाम से प्रसिद्ध ऐसी पुत्री को प्राप्त किया जो कान्ति से दूसरी लक्ष्मी के समान जान पड़ती तथा चक्रवर्ती की गोद में क्रीड़ा करने वाली थी।।84।। कनकश्री के सज्जनता से युक्त दो पुत्रियाँ हुईं। उनमें सुवर्ण लतिका ज्येष्ठ पुत्री थी और पद्मलता नाम की छोटी पुत्री थी।।85।। उन तीनों पुत्रियों तथा दोनों रानियों को शास्त्रज्ञान से सहित अमितश्री नाम की गणिनी ने गृहस्थों के व्रत ग्रहण करा दिये।।86।। सम्यक्त्व की विशुद्धता से सहित कनकश्री और उसकी दोनों पुत्रियाँ नीतिपूर्वक शरीर का त्याग करती हुई पुरुष पर्याय को प्राप्त कर सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न

हुई।87।। और पद्मावती दानव्रत में रत होने पर भी सम्यक्त्व से रहित थी अतः वह उसी सौधर्म स्वर्ग में सौन्दर्य से सुशोभित देवी हुई।88।। सौधर्म स्वर्ग में कनकश्री का जीव जो लक्ष्मी संपन्न देव हुआ था वही स्वर्ग से च्युत होकर तुम हुए हो, ऐसा जानो। वहाँ से आकर यहाँ तुम सुकुण्डल के पुत्र मणि कुण्डल हुए हो।89।। इस प्रकार मेरे भवों को स्पष्ट रूप से कह कर जब मुनिराज चुप हो गये तब कौतुहल से युक्त हो मैंने पुनः नमस्कार कर उनसे पूछा कि मेरी वे पुत्रियाँ कहाँ उत्पन्न हुई हैं ?।90।। पश्चात् भव्य शिरोमणि मुनिराज ने कहा कि तुम्हारी वे पुत्रियाँ जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में रत्नपुर नगर के राजा श्रीषेण के पुत्र हुए हैं।91।। और स्वर्ग में जो देवी थी (पद्मावती का जीव) वह वहां से च्युत होकर वहीं पर वेश्या हुयी है। उस वेश्या के लिये उन पुत्रों–इन्द्र उपेन्द्र में क्रोध से तलवार का युद्ध हो रहा है।92।। उन मुनिराज से ऐसा सुन कर मैं सौहार्द्र वश आप दोनों का युद्ध रोकने के लिये वास्तव में वेग से यहाँ आया हूँ।93।। यह जीव माता होकर बहिन, स्त्री, पिता, पुत्र और शत्रु हो जाता है ऐसे अनेक परावर्तनों से सहित इस संसार से कौन नहीं विरक्त होता है ?।94।। इस प्रकार अपना सम्बन्ध कह कर जब विद्याधर राजा चुप हो रहा तब उन दोनों (इन्द्र, उपेन्द्र) ने मन से क्रोध और हाथ से तलवार छोड़ दी।95।।

हर्ष से उत्पन्न होने वाले अश्रुकणों से जिनके नेत्र व्याप्त थे ऐसे उन दोनों ने उस कल्याणकारी मित्र को नमस्कार कर इस प्रकार के वचन कहे।96।। इस तरह खोटी, प्रवृत्ति करने वाले हम दोनों को सुमार्ग में लगा कर आपने तृतीय भव में होने वाले मातृ स्नेह को भी नया कर दिया है।97।। कौटुम्बिक सम्बन्ध के कारण यदि आप इतनी दूरभूमि पर नहीं आते तो हम दोनों दुःख दायक संसार सागर में पड़ जाते।98।। प्रायः इसी प्रकार के वचन कह कर उन्होंने उस मणि कुण्डल विद्याधर को विदा किया और स्वयं सुधर्मा मुनिराज को नमस्कार कर मुनि हो गये।99।। उनके वियोग से दुखी राजा श्रीषेण विषलिप्त

कमल को सूंघ कर मृत्यु को प्राप्त हो गये।॥00।। निदानबन्ध में जिसका चित्त लग रहा था ऐसी रानी सिंहनन्दा ने भी अपने पति की प्रीति से उसी कमल के द्वारा अपना जीवन छोड़ दिया।॥01।। अनिन्दिता नाम की दूसरी रानी भी अपने प्रेम से आकृष्टचित्त सत्यभामा के साथ विषलिप्त कमल को सूंघ कर मर गयी।॥02।।

राजा श्रीषेण सिंहनन्दा रानी के साथ धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व मेरू सम्बन्धी उत्तरकुरु में जाकर उत्पन्न हुआ।॥03।। अनिन्दिता भी अपने शुद्ध कर्म से वहीं पुरुष हुई और प्रीति के कारण रानी सत्यभामा भी उसकी स्त्री हुई।॥04।। मानसिक व्यथा से रहित श्रीषेण का जीव आर्य उस उत्तर कुरु में तीन पल्य तक सुख भोग कर मरा और मर कर सौधर्म स्वर्ग में श्रीनिलय विमान का स्वामी देव हुआ।॥05।। निदान से उस तृतीय भव के पति के साथ साथ जाने वाली सिंहनन्दा भी उसी श्रीदेव की प्रिया हुई।॥06।। अनिन्दिता का जीव जो उत्तर कुरु में आर्य हुआ था वह भी मरण होने पर उसी सौधर्म स्वर्ग के विमलप्रभ विमान में देव हुआ।॥07।। सत्यभामा भी जो उत्तर कुरु में आर्या हुयी थी सुप्रभा नाम की सुन्दर देवी होकर अपने पति उसी अमितप्रभ देव का अनुनय करने लगी।॥08।। अमितप्रभ देव बहुत भारी मित्रता करता हुआ श्रीदेव के साथ रहता था मानों वह उसे दूसरा इन्द्र ही समझ रहा था।॥09।। वहाँ तुमने भक्ति से जिनेन्द्र देव की पूजा करते तथा देवों का सुख भोगते हुए पांच पल्य प्रमाण काल व्यतीत किया।॥10।। पहले जो श्रीषेण राजा रत्नपुर का पालन करता था उसे ही तुम स्वर्ग से च्युत होकर यहां उत्पन्न हुआ अमिततेज जानो।॥11।। वह सिंहनन्दा भी अपने निदान दोष से त्रिपृष्ठ की पुत्री तुम्हारी इस समय की स्त्री स्वयंप्रभा हुई है।॥12।।

यह अनिन्दिता भी तुम्हारा पुत्र श्री विजय हुयी है। तथा सुतारा को तुम सात्यकि की पुत्री सुतारा जानो।॥13।। श्रीषेण राजा की पर्याय में तुमने जिस कपिल को निर्वासित किया था। वह विद्याधरों का राजा

होकर संसार में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।॥14॥ भूतरमण नामक अटवी में ऐरावती नदी के तट पर एक आश्रम है जिसमें तापस पर्ण शालाएं बना कर निवास करते हैं।॥15॥ उसी आश्रम में कुशों का संग्रह करने वाला एक कौशिक नाम का तापस रहता था। समीचीन चारित्र को रोकने वाली अरुन्धती उसकी स्त्री थी।॥16॥ निरन्तर परस्पर आसक्त रहने वाले उन दोनों के वह कपिल का जीव मृगशृङ्ग नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुआ॥ यह मृगशृङ्ग मृग चर्म तथा वल्कलों को धारण करता था।॥17॥ जो बाल अवस्था में ही जटाधारी हो गया तथा साफ किये हुए मूंजों से निर्मित कटिसूत्र को धारण करता था ऐसा वह मृगशृङ्ग बालतप–अज्ञानतप करता था।॥18॥ वह तापस, जो बुद्धिमान्, तथा कार्य कुशल कपिल था चिर काल बाद मर कर 'मैं विद्याधर होऊँ' इस निदान के कारण यह अशनिघोष हुआ है।॥19॥ इस अशनिघोष ने सुतारा को इसलिये हरा था कि इसका चित्त सत्यभामा में लगी हुई बहुत भारी प्रीति से संस्कारित है।॥20॥ इस प्रकार उनके पूर्वभव कह कर जब केवली जिनेन्द्र रुक गये तब संसार से विरक्त होने के कारण अशनिघोष ने तप ग्रहण कर लिया–मुनि दीक्षा ले ली।॥21॥ दुःख से खुलने योग्य अपने पुत्र के स्नेह पाश को खोल कर स्वयंप्रभा ने भी केवली जिनेन्द्र के चरणों को नमस्कार किया और पश्चात् दीक्षा ग्रहण कर ली।॥22॥ विजय केवली को भक्ति पूर्वक प्रणाम कर जो श्रावक के व्रत से विभूषित थे ऐसे विद्याधर राजा तथा भूमि गोचरी राजा दोनों अपने अपने स्थान पर चले गये।॥23॥ आत्म हित में उद्यत रहने वाला विद्याधरों का राजा और भूमिगोचरी राजा सुनाने योग्य धर्मकथाओं को सुनता तथा जिनेन्द्र भगवान की महामह–पूजा करता हुआ समय व्यतीत करने लगा।॥24॥

अथानन्तर किसी समय पोदनपुर का राजा उपवास का नियम लेकर जिन मन्दिर में विद्यमान था। वहां उसने आये हुए देवगुरु और अमर गुरु नामक दो चारण ऋद्धि धारी मुनि देखे।॥25॥ देव वन्दनादि की विधि पूरी कर चुकने के बाद बैठे हुए उन मुनियों को राजा ने प्रणाम कर अपने पिता के पूर्व भव पूछे।॥26॥

तदनन्तर उन दोनों मुनियों में ज्येष्ठ मुनि देव गुरु, ललाट तट पर हस्त कमलों को स्थापित करने वाले राजा से इस प्रकार कहने लगे। भावार्थ–मुनिराज कह रहे थे और राजा अञ्जलि को ललाट पर रख कर सुन रहा था।॥27॥ मैंने श्रेयान्सनाथ तीर्थंकर के पास पहले कथा प्रसङ्ग से आया हुआ प्रथम नारायण का वृत्तान्त सुना था।॥28॥ इस भरत क्षेत्र में भरत नाम का पूर्ण चक्रवर्ती था। जो आश्चर्य कारक लक्ष्मी से सहित था तथा चक्रवर्तियों में पहला चक्रवर्ती था।॥29॥ उनका जो मरीचि इस नाम से प्रसिद्ध पुत्र था वह असार संसार में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।॥30॥ पश्चात् मगध देश के राजगृह नगर में राजा विश्वभूति ने अपना विशाल राज्य महान् आत्मा विशाखभूति नामक छोटे भाई पर रक्खा और युवराज पद अपने पुत्र के लिये दिया।॥32॥ पश्चात् श्रीधर मुनि को नमस्कार कर जिन दीक्षा धारण की और समस्त कर्मों का क्षय कर अविनाशी शान्तपद–मोक्ष प्राप्त किया।॥33॥

तदनन्तर विशाखभूति की स्त्री लक्ष्मणा के ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ जो विशाख नन्दी इस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ।॥34॥ श्री विश्वनन्दी के सब ऋतुओं से संपन्न वन को देख कर उसने माता के द्वारा पिता से प्रार्थना करायी कि वह वन मुझे दिला दिया जाये।॥35॥ पिता ने प्राग्ज्योतिष नगर के राजा को मारने के लिये युवराज को बाहर भेज दिया॥ पश्चात् वह संरक्षित वन अपने पुत्र के लिये दे दिया।॥36॥ इधर सब को आनन्दित करने वाला विश्वनन्दी जब राजा की आज्ञानुसार कार्य समाप्त कर वेग से लौटा तब उसने वनापहरण के क्रोध से राजा की सेवा नहीं की तथा शिला का स्तम्भ, कपित्थ का वृक्ष और लक्ष्मणा के पुत्र विशाख नन्दी को भग्न किया। भावार्थ–दूतों के द्वारा विश्व नन्दी को वनापहरण का समाचार पहले ही मिल गया था इसलिये जब वह वापिस आया तब राजा से नहीं मिला। सीधा वन में गया और विशाखनन्दी को मारने के लिये तत्पर हुआ। विशाख नन्दी भागकर एक पाषाण के खम्भे के पीछे छिपा परन्तु विश्वनन्दी ने वह खम्भा तोड़ डाला। वहाँ से

भाग कर विशाख नन्दी एक कैंथा के वृक्ष पर जा चढ़ा परन्तु विश्व नन्दी ने उसे भी उखाड़ दिया।।37–138।। पश्चात् दया से जिसकी बुद्धि आर्द्र थी ऐसे विश्वनंदी ने भयभीत विशाख नन्दी को मारा नहीं किन्तु काका विशाख भूति के साथ संभूत नामक मुनिराज के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली।।39।।

मगध देश का राजा विशाखभूति चिर काल तक सम्यक्त्व से सुशोभित तप को तप कर तथा विधि पूर्वक शरीर को छोड़ कर महा शुक्र स्वर्ग में देव हुआ।।40।। इधर विश्व नन्दी मुनिराज एक मास का उपवास कर आहार के समय जब मथुरा नगरी में प्रवेश कर रहे थे तब मध्याह्न के समय दुही जाने वाली घट के समान स्थूल थन से युक्त एक प्रसूता गाय ने मार्ग में उन पर प्रहार कर दिया।।41।। उसके सींगों के प्रहार से विश्व नन्दी मुनि गिर पड़े। उसी समय वेश्या के मकान की छत पर विशाख नन्दी बैठा था उसने उन गिरे हुए विश्व नन्दी मुनि की हँसी की।।42।। उसकी गर्व पूर्ण हँसी से मुनि को अत्यधिक क्रोध आ गया और उन्होंने उसे मारने की इच्छा से निदान कर लिया।।43।। पश्चात् मथुरा से लौट कर उन्होंने अत्यन्त कृश शरीर को संन्यास विधि से छोड़ा और तप के फल से वे महाशुक्र स्वर्ग में महान् ऋद्धियों को धारण करने वाले देव हुए।।44।।

इधर तमसा नदी के उस पार तापसियों का एक पवित्र आश्रम था। उसमें निरन्तर यज्ञ करने वाला महाजट नाम का एक तापस रहता था।।45।। विशाख नन्दी भी चिरकाल तक संसार में भ्रमण कर उस तापस के सुजट नाम का पुत्र हुआ।। सुजट की माता का नाम जया था।।46।। वह सुजट पंचाग्नि तप तप कर स्वर्ग में बड़ा देव हुआ। पश्चात् वहां से चय कर अश्वग्रीव नाम का विद्याधर राजा हुआ।।47।। विशाखभूति भी स्वर्ग से चय कर विजय नाम का बलभद्र हुआ और विश्वनन्दी त्रिपृष्ठ नाम का पहला नारायण हुआ।।48।। इस प्रकार स्पष्ट रूप से त्रिपृष्ठ के पूर्व भव कह कर जब मुनि विरत हुए तब समस्त

सभा हर्ष विभोर होकर तप के फल की प्रशंसा करने लगी।॥49॥ इस तरह वे महामुनि–देवगुरु और अमरगुरु धर्मकथाएं करते हुए वहां चिरकाल तक ठहर कर अन्तर्हित हो गये और राजा भी अपने राज महल में रहने लगा।॥50॥

एक बार विद्याधर राजा तथा भूमिगोचरी राजा–दोनों ही रथनूपुर में मिले। वहाँ वे ग्रीष्म ऋतु के समय बाह्य उद्यान में घूम रहे थे।॥51॥ वहां उन्होंने अशोक वृक्ष के नीचे स्थित विपुलमति और विमलमति नाम को धारण करने वाले दो मुनि देखे।॥52॥ उन्होंने पहले मुकुट की किरणों से उनके चरणों को पीला किया पश्चात् अपने हाथ से तोड़े हुए पुष्पों से उनकी पूजा की।॥53॥ तदनन्तर उन दोनों भव्य राजाओं ने वृद्धावस्था के कारण विषयासक्ति को शिथिल कर मुनि–युगल से अपनी आयु पूछी।॥54॥ आप दोनों की आयु छत्तीस दिन की है इसलिये शीघ्र ही अपना हित करो, ऐसा उन मुनियों ने उनसे कहा।॥55॥ वे दोनों वीर अभिनन्दन नामक आचार्य से करने योग्य कर्म को ज्ञात कर हृदय में सन्यास तथा जिनेन्द्र भगवान् को धारण कर उत्तरमुख होकर बैठ गये।॥56॥ विद्याधर राजा–अमिततेज ने अपना राज्य सुतेजस् नामक अपने पुत्र को सौंपा था और श्रीविजय ने भी अपनी लक्ष्मी श्रीदत्त नामक अपने पुत्र को प्रदान की थी।॥57॥ विशुद्ध आत्मा वाला विद्याधर राजा तो सब प्रकार की आकांक्षाओं को छोड़कर बैठा था परन्तु अप्रबुद्ध आत्मा वाला पृथिवीपति–श्रीविजय पिता के पद की आकांक्षा करता रहा।॥58॥

तदनन्तर आगमानुसार संन्यास के द्वारा शरीर छोड़कर अमिततेज ने आनत नाम का स्वर्ग प्राप्त किया।॥59॥ वहां वह माङ्गलिक शब्दों से प्रशंसित नन्द्यावर्त विमान में प्रातः काल के सूर्य के समान आभा वाला आदित्यचूल नाम का देव हुआ।॥60॥ और राजा श्रीविजय उसी आनत कल्प के स्वस्तिकावर्त विमान में दैदीप्यमान चूड़ामणि की कान्ति से युक्त मणिचूल नाम का देव हुआ।॥61॥ जिन्हें शीघ्र ही अवधिज्ञान

प्रकट हो गया था ऐसे उन देवो ने जान लिया कि हम श्रावकाचार से संचित पुण्य से वहां उत्पन्न हुए हैं।॥62॥ तदनन्तर वहां उन्होंने सर्व प्रथम भक्ति पूर्वक दिव्य गन्ध आदि के द्वारा जिनेन्द्र भगवान् की पूजा की। पश्चात् देवों की अविनाशी विभूति का उपभोग किया।॥63॥ जिसका नवीन यौवन कभी म्लान नहीं होता ऐसे सुन्दर शरीर को धारण करने वाले उन देवों का वहाँ बीस सागर प्रमाण काल सुख से व्यतीत हो गया।॥64॥ मैं आदित्य चूल उस स्वर्ग से आकर प्रभाकरी नगरी के स्वामी राजा के अपराजित नाम का उत्तम पुत्र हुआ था।॥65॥ मणिचूल को तुम 'यह मैं ही हूँ' ऐसा विद्याधर राजा समझो। तुम मेरे उसी पिता के अनन्त वीर्य नामक पुत्र हुए थे।॥66॥ युद्ध में दमितारि को मारकर निदान बन्ध के कारण तुम नारायण हुए थे। और मरकर रत्नप्रभा पृथिवी के सीमन्तक बिल को प्राप्त हुए थे।॥67॥ वहाँ तुम्हें नरक की घोर वेदना भोगते देख पिता के जीव धरण ने समझा कर सम्यक्त्व ग्रहण कराया था।॥68॥ निरन्तर दुखी रहने वाले तुम वहाँ बियालीस हजार वर्ष व्यतीत कर सम्यक्त्व के कारण वहाँ से च्युत हुए।॥69॥

तदनन्तर इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में जो विजयार्ध पर्वत है उसकी उत्तर श्रेणी पर एक गगन वल्लभ नाम का नगर है।॥70॥ जिसने उत्कृष्ट संपदा से इन्द्र को जीत लिया था ऐसा मेघ वाहन विद्याधर उस नगर का रक्षक था।॥71॥ उसकी मेघ मालिनी नाम की प्रिय रानी थी। आप नरक से निकलकर उन दोनों के मेघनाद नामक पुत्र हुए।॥72॥ तदनन्तर पिता का उत्कृष्ट चक्रवर्ती पद पाकर तुम अन्य रूप धारी अपने ही समान हितकारी पांच सौ पुत्र से सुशोभित हो रहे हो।॥73॥ हम दोनों के अनेक जन्मों से अखण्ड अच्छे सम्बन्ध चले आ रहे हैं। इसलिये परस्पर के देखने से प्रीति उत्पन्न हुई है।॥74॥ दुःख दायक इन्द्रियों के विषयों में व्यर्थ ही आसक्ति मत करो। आदर पूर्वक वैराग्य मार्ग में लगने की भावना करो।॥75॥ बहुत भारी मोह रूपी अग्नि के द्वारा जलते हुए इस जगत् में विषयासक्ति को छोड़ने वाले

तपस्वी–मुनि ही सुखी हैं।।76।। अपने द्वारा धारण की हुई समस्त सन्मार्ग को दिखाने वाली ज्ञानदीपिका को प्राप्त कर तुम मोहरूपी गाढ़ अन्धकार से अन्धे मत होओ।।77।। लक्ष्मी से युक्त होने पर भी तुम निरन्तर कल्याणकारी तप में जागरूक–सावधान रहो अर्थात् उत्तम तप धारण करने की निरन्तर भावना रक्खो। गृहस्थ उत्कृष्ट होने पर भी साधारण मुनि की गति को प्राप्त नहीं हो सकता।।78।। उत्कृष्ट बुद्धि तथा विद्या से युक्त होकर भी तुम पुत्र जाति तथा स्त्री आदि के जाल में मत पढ़ो यहाँ तुम संसार को छेद सकते हो।।79।। इस प्रकार यथाक्रम से उसके और साथ में अपने भी पूर्वभव कह कर तथा उस विद्याधर राजा को हित में लगाकर अच्युतेन्द्र तिरोहित हो गया।।80।। तदनन्तर मेघनाद ने तृण के समान अनादर से विद्याधरों का ऐश्वर्य छोड़कर तथा अभिनन्दन गुरु को प्रणाम कर दीक्षा धारण कर ली।।81।।

जो ध्यान में स्थित थे, जिन्होंने विधिपूर्वक इन्द्रियों के समूह को जीत लिया था, आलस्य की स्थिति को दूर कर दिया था, जो शुद्ध आत्मा से संसार का भेदन करने वाली बारह भावनाओं का चिन्तवन करते थे, जो कठिनाई से निवारण करने योग्य परिषहों के समान सुन्दर कण्ठ के शत्रु द्वारा किए हुए भारी उपसर्गों को क्षमा के द्वारा कुण्ठित करके स्थित थे तथा जिन्होंने समीचीन आगम को कण्ठस्थ किया था ऐसे वे मेघनाद मुनि सुशोभित हो रहे थे।।82।। जिनकी आत्मा शुद्ध थी और जिन्होंने गिरिनन्दन पर्वत पर अच्छी तरह आराधनाओं का आराधन किया था।। ऐसे वे मेघनाद मुनि अपना शरीर छोड़कर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुए। समीचीन संपत्ति से सहित वह प्रतीन्द्र वहां परोपकारी अच्युतेन्द्र को देख कर जिस प्रकार अत्यधिक सुख को प्राप्त हुआ था उस प्रकार देवाङ्गनाओं का नाटक देखकर नहीं हुआ था।।83।।

इस प्रकार महाकवि असग द्वारा विरचित शान्तिपुराण में विद्याधरराजा मेघनाद का अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र होने का वर्णन करने वाला अष्टम सर्ग समाप्त हुआ।।8।।

नवम सर्गः

अथानन्तर जम्बू वृक्ष से युक्त जम्बूद्वीप है जिसकी वज्रमय वेदिका को प्रिया के समान आंलिङ्गित्त कर लवण समुद्र सुशोभित हो रहा है।।1।। उस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के दक्षिणतट पर मङ्गलों से परिपूर्ण मङ्गलावती नामका देश है।।2।। जहाँ पर गर्व से रहित, भद्र परिणामी, बहुत भारी भोगों से सहित, सावधान मनुष्य सुशोभित होते हुए समस्त कलाओं को धारण करते हैं।।3।। जहाँ यदि दुर्जनता देखी जाती थी तो आदि मध्य और अन्त में विभिन्न रस को धारण करने वाली विनाशीक ईखों में ही देखी जाती थी वहाँ के मनुष्यों में नहीं, क्योंकि वहाँ के मनुष्यों में कार्य में प्रारम्भ मध्य और अन्त में एक समान रस–स्नेह रहता था तथा सबकी प्रीति अभंगुर स्थायी रहती थी।।4।। जिस देश में सज्जन और वृक्ष परस्पर की बहुत भारी ईर्ष्या से ही मानों फलों के अभाव में उन्नत होते है और फलों के संचय में नम्रीभूत होते हैं। भावार्थ–जिस प्रकार वृक्ष फल टूट जाने पर भार कम हो जाने से ऊपर उठ जाते हैं और फलों के रहते हुए उनके भार से नीचे की ओर झुक जाते हैं उसी प्रकार सज्जन कार्य के समाप्त होने पर ऊपर उठ जाते हैं और कार्यों का संचय रहते नम्रीभूत रहते हैं। अथवा जिस प्रकार फल रहित वृक्ष ऊचे होते हैं उसी प्रकार गुण रहित मनुष्य अहंकार करते हुए अपने आप को उच्च अनुभव करते हैं और गुणवान् मनुष्य विनय से नम्रीभूत रहते हैं।।5।। जहाँ पर सुन्दर स्त्रियाँ शरद् ऋतु की रात्रियों के समान सुशोभित होती हैं। क्योंकि जिस प्रकार शरद् ऋतु की रात्रियाँ चारुताराम्बरोपेताः–सुन्दर नक्षत्रों से युक्त आकाशसे सहित होती हैं उसी प्रकार वहाँ की सुन्दर स्त्रियाँ भी चारुताराम्बरोपेताः–सुन्दर सूत वाले वस्त्रों से सहित थीं। और जिस प्रकार शरद् ऋतु की रात्रियाँ प्रसन्नेन्दुमुखश्रियः–मुख के समान निर्मल चन्द्रमा की शोभा से सहित

होती हैं उसी प्रकार वहाँ की स्त्रियाँ भी निर्मल चन्द्रमा के समान मुख की शोभा से सहित थीं।।6।। जहाँ की नदियाँ तटों पर उत्पन्न लवङ्ग के फूलों के समूह से प्रयत्न के बिना सुवासित जल को निरन्तर धारण करती हैं।।7।। वहाँ कमल समूहों में बैठे हुए गर्वीले हंस चलती हुई लक्ष्मी के मनोहर नूपुरों की झनकार के साथ ईर्ष्या से ही मानों शब्द करते रहते हैं।।8।।

तदनन्तर उस देश में जगत् प्रसिद्ध रत्नसंचय नामक वह नगर है। जहाँ उत्तम रत्नों के गोपुर बने हुए हैं और उत्तम रत्नों का निवास होने से ही मानों उसका रत्नसंचय नाम पड़ा था।।9।। जहाँ करोड़ों उपमाओं से सहित, चित्रमय वाहनों से सुन्दर, विशुद्ध और पक्षियों के संचार से युक्त अट्टालिकाओं से उन्हीं के अनुरूप नूपुरों से सुशोभित, विविध प्रकार के पत्राकार तिलकों से सहित, विशुद्ध–उज्ज्वल और विभ्रम हावभावों से सहित स्त्रियाँ निवास करती हैं। भावार्थ–स्त्रियों और अट्टालिकाओं में शाब्दिक सादृश्य था।।10–11।। जहाँ कमलों से सहित अनेक सरोवरों की तरङ्गों से प्रेरित वायु कामीजनों को सुख के लिए धीरे–धीरे बहती रहती है।।12।। जो गगन चुम्बी महलों के अग्रभाग में सघन रूप से लगी हुई ध्वजाओं के संचार से ऐसा जान पड़ता है मानों तीव्र संताप के भय से सूर्य के मार्ग को ही रोक रहा हो।।13।। जहाँ निरन्तर बरसने वाले–सदा दान देने वाले शुद्ध–निर्मल हृदय नगर वासी, निश्चित समय पर बरसने वाले वर्षा ऋतु के काले मेघों को जीतते रहते हैं।।14।। जहाँ स्त्रियाँ शब्द विद्या–व्याकरण विद्या के समान सुशोभित होती हैं। क्योंकि जिस प्रकार व्याकरण विद्या चारुपदन्यासा–सुन्दर शब्दों वाले न्यास ग्रन्थ से सहित हैं अथवा सुन्दर सुबन्त तिङन्त रूप पदों के प्रयोग से सहित हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ भी चारु पदन्यासा–सुन्दर चरण निक्षेप से सहित हैं। जिस प्रकार व्याकरण विद्या प्रसन्नतर वृत्ति–अत्यन्त निर्दोष वृत्ति ग्रन्थ से सहित है उसी प्रकार स्त्रियाँ भी अत्यन्त प्रसन्न वृति–व्यवहार से सहित हैं और जिस

प्रकार व्याकरण विद्या सद्रूप–सिद्धि–समीचीन रूप सिद्धि ग्रन्थ से सहित है उसी प्रकार स्त्रियाँ भी समीचीन रूप सिद्धि सौन्दर्य साधना से सहित हैं।।15।। जहाँ आकाश में शरद् ऋतु के चंचल मेघ भवन रूपी शेष नाग के द्वारा छोड़ी हुई कांचली के खण्डों के समान दिखायी देते हैं।।16।।

उस नगर में सब जीवों का कल्याण करने वाली दया को धारण करने वाला क्षेमंकर नामका राजा रहता था।।17।। जिसके उत्पन्न होते ही तीनों लोक स्वयं हर्ष से सेवा को प्राप्त हो जाते हैं उसका प्रभुत्व क्या कहा जाय?।।18।। जो मतिश्रुत अवधि ज्ञान के त्रिक रूपी निर्मल चक्षु के द्वारा अन्तरङ्ग बहिरङ्ग दोनों प्रकृतियों की समीचीन स्थिति का एक साथ ज्ञाता था।।19।। जो निर्भय होकर भी अन्य मनुष्यों के द्वारा कठिनाई से चढ़ाये जाने योग्य धनुष को धारण करता था और पुण्यजन–राक्षसों का स्वामी होकर भी सदय–दया सहित तथा सदय–समीचीन भाग्य से मुक्त था।।20।।

जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमा चित्रा नामक चंचल तारा के साथ सम्बन्ध को प्राप्त कर सुशोभित होता है उसी प्रकार वह राजा कनक चित्रा नामक रानी के साथ सम्बन्ध को प्राप्त कर सुशोभित हो रहा था।।21।। तदनन्तर वह अच्युतेन्द्र कनक चित्रा देवी के गर्भ में आने के लिए उद्यत हुआ तब कल्याणकारी आगमन को सूचित करने वाले उत्सव पहले से ही होने लगे।।23।। तदनन्तर रानी ने रात्रि के चतुर्थ प्रहर में सूर्य, चन्द्रमा, सिंह, हाथी, चक्र और छत्र ये स्वप्न देखे।।24।। पश्चात् रानी ने शोभायमान पराक्रम से युक्त वह पुत्र उत्पन्न किया जो राजहंस–लाल चोंच तथा लाल पज्जों वाला हंस होकर भी लक्ष्मणानुगतां–सारस की स्त्रियों से अनुगत शरीर को धारण कर रहा था। (परिहार पक्ष में श्रेष्ठ राजा होकर भी लक्ष्मण–अनुगतां–सामुद्रिक शास्त्र में निरूपित अच्छे लक्षणों से युक्त शरीर को धारण कर रहा था।)।।25।। उत्पन्न होते ही उसे इन्द्र के समान शोभा अथवा लक्ष्मी से युक्त देख पिता ने प्रसन्न होकर उसका वज्रायुध नाम रक्खा था।।26।।

जिस प्रकार स्वच्छ सरोवर में प्रतिबिम्बित शरद् ऋतु के निर्मल तारे सुशोभित होते हैं उसी प्रकार जिस पुत्र के मनरूपी मान सरोवर में प्रतिबिम्बित–अवतीर्ण समस्त निर्मल विद्याएं सुशोभित हो रहीं थीं।।27।। जिस कारण उसके समान गुणी और गुणों के अन्तर को जानने वाला दूसरा नहीं था उस कारण वह स्वयं ही अपने आपके उपमानोपमेय भाव को प्राप्त था।।28।। जिस प्रकार चन्दन की सुगन्धता, समुद्र की गम्भीरता और सिंह की शूरता अकृत्रिम होती है उसी प्रकार जिसकी उदारता अकृत्रिम थी।।29।। शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल जिसका यश एक (पक्ष में अद्वितीय) होकर भी एक साथ समस्त तीनों लोकों में व्याप्त हो गया था यह आश्चर्य की बात है।।30।। मन्द मुस्कान से सहित जो पुत्र अमद–गर्व से रहित होकर भी प्रमद–बहुत भारी गर्व से सहित था। (परिहार पक्ष में हर्ष से सहित था) जो सुनय–अच्छे नय से युक्त होकर भी विनयान्वित–नयके अभाव से सहित था (परिहार पक्ष में विनय गुण से सहित था) और सूक्ष्म दृष्टि–सूक्ष्म नेत्रों से सहित होकर भी विशालाक्ष–बड़े–बड़े नेत्रों से सहित था (परिहार पक्ष में गहराई से पदार्थ को देखने वाला होकर भी बड़े–बड़े नेत्रों से सहित था)।।31।। जो अध्ययन किये बिना ही विद्वान् था, अच्छी तरह अलंकृत न होने पर भी सुन्दर था, और आराधना सेवा किये बिना ही सत्पुरुषों से निरन्तर स्नेह भाव रखता था।।32।। जो आयुधीय– शास्त्रों द्वारा प्रहार करने वाला होकर भी अनिस्त्रिंश–खड्ग से रहित था (पक्ष में निर्स्त्रिश–क्रूर नहीं था) नदीन–नदियों का स्वामी–समुद्र होकर भी अजलस्थिति–जल के सद्भाव से रहित था (पक्ष में नदीन–दीन न होकर भी अजड स्थिति–मूर्खजन की स्थिति–जल रहित था) और मनुष्य धर्मा–यक्ष होकर भी वसुत्याग परायण–कुबेर का त्याग करने में तत्पर था–अपने स्वामी के त्याग करने में उद्यत था (पक्ष में मनुष्यस्वभाव से युक्त होकर भी धन का त्याग करने में तत्पर था अर्थात् दानी था)।।33।। जिस प्रकार कल्याणप्रकृति–सुवर्णमय तथा सून्नति–बहुत

भारी ऊँचाई से सहित सुमेरु पर्वत की सेवनीय पादच्छाया–प्रत्यन्त पर्वतों की छाया का आश्रय कर विबुध–देव विश्राम करते हैं उसी प्रकार कल्याण प्रकृति–कल्याणकारी स्वभाव से युक्त तथा सून्नति–उदारता से सहित जिस वज्रायुध के सेवनीय पादच्छाया–चरणों की छाया का आश्रय कर विबुध–विशिष्ट अथवा विविध प्रकार के विद्वान् विश्राम करते थे।।34।। सुन्दरता जिसके शरीर को विभूषित करती थी, नवयौवन जिसके शरीर को विभूषित करता था, सौभाग्य जिसके नवयौवन को अलंकृत करता था और शौच गुण के धारकों के द्वारा स्तुत शौचगुण जिसके सौभाग्य को अत्यधिक सुशोभित करता था।।35।।

वह प्रसन्न हृदय वज्रायुध युवराज पद को पाकर लोकों के मन को हरण करने वाले शरद ऋतु के पूर्णचन्द्रमा के समान दैदीप्यमान हो रहा था।।36।। उस वज्रायुध ने कल्याण करने वाली पद्मिनी के समान लक्षणों से सहित तथा सुन्दर विभ्रम हाव भाव से सुशोभित (पद्मिनी के पक्ष में सुन्दर पक्षियों के संचार से सुशोभित लक्ष्मीमती नामकी स्वस्थ कन्या को विवाहा था।।37।। जिनमें समान रूप से सत्त्वरस की स्थिति थी ऐसे वे दोनों दम्पती सदा न्यूनाधिक न होने वाले प्रेम से परस्पर एक दूसरे के चित्त को हरते रहते थे।।38।।

तदनन्तर वह प्रतीन्द्र स्वर्ग से च्युत होकर उन दोनों के दिशाओं में प्रसिद्ध सहस्रायुध नाम को धारण करने वाला पुत्र हुआ।।39।। याचकों के लिए सुवर्णरजतरूप धन को देने वाले उस श्रेष्ठ विद्वान्– सहस्रायुध ने सातसौ अन्य सुन्दर स्त्रियों को ग्रहण किया।।40।। तदनन्तर कोकिलाओं की मधुर कूक से जिसकी सूचना मिल रही थी ऐसी वसन्त ऋतु आ पहुँची। वह वसन्त ऋतु ऐसी जान पड़ती थी मानो राजाधिराजों से सुशोभित उन महाराज की सेवा करने के लिए ही आयी हो।।41।। वन भूमि में दूर–दूर तक फैले हुए फूलों से व्याप्त पलाश के वृक्ष ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों कामदेव की छावनी के गेरु से रंगे हुए तम्बू ही हों।।42।। भ्रमरावली से वेष्टित आम के वृक्ष नवीन भौरों से ऐसे सुशोभित

हो रहे थे मानो कामी मनुष्यों के हृदय में लगने वाले कामदेव के तोमर नामक विशिष्ट शस्त्रों से ही सुशोभित हो रहे हों।।43।। लाल अशोक वृक्ष के लाख के समान कान्ति वाले सुन्दर पल्लवों को देखकर अनुराग से भरी कौन पथिक स्त्री शोक के स्थान को प्राप्त नहीं हुई थी?।।44।। खिले हुए आम के वनों में कोकिलाएं जोर–जोर से मनोहर शब्द कर रही थीं। उनके वे मनोहर शब्द ऐसे जान पड़ते थे मानों तीनों लोकों को जीतने वाले कामदेव के मङ्गलमय नगाड़े ही बज रहे हों।।45।। मौलश्री के फूलों की सुगन्धित मधु से मत्त भौंरे मानों वसन्त ऋतु की उत्कृष्ट कीर्ति को कुछ अस्पष्ट शब्दों में गा रहे थे।।46।। वन भूमि में जब वसन्त चौर के समान आगे–आगे घूम रहा था तब स्त्रियों के प्रेमी कितने ही पथिक अर्धमार्ग से लौट कर चले गये थे।।47।। खिले हुए फूलों की सुगन्ध से जिसने समस्त दिशाओं के अग्रभाग को सुगन्धित कर दिया है ऐसा नागकेसर का वृक्ष पुरुषों में श्रेष्ठ होने पर भी किस रागी मनुष्य को वापिस नहीं करता?।।48।। जो अशोक वृक्षों की बहुत भारी लक्ष्मी वृद्धि के समान अपनी सम्पदाओं की बहुत भारी लक्ष्मी वृद्धि कर रहा था ऐसा वसन्त साधारण मनुष्य के समान स्वयं भी उन्मत्त हो गया था।।49।। जिसके पुष्प–ऋतुधर्म की उत्पति व्यतीत हो चुकी है ऐसी वृद्ध वेश्या, जिस प्रकार कामी मनुष्यों के आनन्द के लिए नहीं होती उसी प्रकार जिसको पुष्प–फूलों की उत्पति व्यतीत हो चुकी है ऐसी कुन्दलता पहले के समान भ्रमरों के आनन्द के लिए नहीं हुई थी।।50।। गन्ध रहित कनेर का फूल भ्रमरों के द्वारा प्राप्त नहीं किया गया था। सो ठीक ही है क्योंकि विशेष को जानने वाला व्यक्ति वर्ण मात्र से निर्गुण की सेवा नहीं करता।।51।। स्त्रियों सहित समस्त पुरुष मधु कामिनी की मालाओं को सिर पर धारण कर रहे थे उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों मालाओं के छल से कामदेव की मूर्तिमन्त कीर्ति को ही धारण कर रहे थे।।52।। युवाओं का मन यद्यपि (व्याकरण के नियमानुसार) नपुसंक था तो भी अङ्कोट वृक्ष के पुष्प ने उसे केवल अपनी गन्ध से स्त्रीमय कर दिया था।।53 हिंडोलना चलने के भय से तरुण स्त्रियों ने सखीजनों के

समीप में ही साथ बैठे हुए पतियों को अपने लीलापूर्वक आलिङ्गनों से संतुष्ट किया था।।54।।

तिलकवृक्ष, पुष्परस से मत्त भ्रमरों से युक्त भीतरी कलिकाओं से सहित फूलों के द्वारा वन पङ्क्तिरूपी स्त्रियों के तिलक की शोभा को विस्तृत कर रहा था। भावार्थ—तिलक वृक्ष के फूलों पर जो काले—काले भ्रमर बैठे थे उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानों वन पङ्क्ति रूपी स्त्रियों ने तिलक ही लगा रक्खे हों।।55।। कुङ्कुम—केशर से निर्मित अङ्गराग और किङ्किरात के फूलों से निर्मित सेहरों से सहित लाल वस्त्र को धारण करने वाला यह जगत् ऐसा जान पड़ता था मानों राग से ही रचा गया हो।।56।। नवीन कमलों की केशर से पीली—पीली दिखने वाली भ्रमर पङ्क्तियाँ वन के मध्य भाग में भी काम के वाणों के समान पथिकों को संतप्त कर रही थीं।।57।। यह निश्चित् है कि काल के बल से सहित मन्द व्यक्ति भी समर्थ हो जाता है इसीलिये तो काम ने शरीर रहित होकर भी वसन्त के रहते हुए महात्माओं को पराजित कर दिया था।।58।। चंचल नक्षत्रों (पक्ष में आँख की चंचल पुतलियों) से सहित रात्रियाँ विरही चकवों की पीड़ा देखकर दया से ही मानों प्रतिदिन कृशता को प्राप्त हो रही थीं।।59।। जिस प्रकार धन की इच्छा करने वाला अदक्षिण—अनुदार राजा धनदाध्युषितां—धन देने वाले पुरुषों से अधिष्ठित दिशा की ओर जाता हुआ उसे बहुत तीक्ष्ण करों—टैक्सों से संतप्त करता है उसी प्रकार धन की इच्छा करते हुए के समान अदक्षिण—उत्तरायण का सूर्य धनदाध्युषिता—कुबेर से अधिष्ठित उत्तर दिशा की ओर जाता हुआ तीक्ष्ण करों—किरणों से संतप्त कर रहा था।।60।।

भ्रमर उत्कृष्ट गन्ध से युक्त होने पर भी चम्पा के फूलों के पास नहीं जा रहे थे उससे ऐसा जान पड़ता था मानों वे मधु—वसना के मङ्गलाचरण के लिये रखे हुए दीप समूह की शङ्का से ही नहीं जा रहे थे।।61।। वैभव, निर्गुण मनुष्य में भी गुण धारण करने के लिये समर्थ

होता है इसीलिये तो फूलों से युक्त कुरवक वृक्ष भी (पक्ष में खोटे शब्द से युक्त पुरुष भी) भ्रमरों के शब्दों से सुख–सुन्दर शब्दों से युक्त हो गया था।।62।। स्त्री जनों ने कान में आम की नवीन मञ्जरी धारण की थी और वसन्त ने वृद्ध मनुष्य को भी काम की नौवीं–अवस्था–जड़ता को प्राप्त करा दिया।।63।। दिन के समय भी काम के वाणों से दुःखी युवाजन चकवों के समान उपभोग के लिये स्त्रियों के साथ वनान्त में निवास करते थे।।64।। उस समय उत्पन्न होने वाले मुकुलों–बेड़ियों रूपी हास में उपलक्षित लता रूपी मनोहर युवतियाँ ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानों विलास सहित (पक्ष में पक्षियों के संचार से युक्त) वसन्त की लक्ष्मी को ही धारण कर रही हों।।65।। कानों के पास धारण किये हुए आम के पल्लव ने स्त्रियों के हृदय के भीतर स्थित मान को शीघ्र ही निकाल दिया था यह आश्चर्य की बात थी।।66।। हिम–कुहरे के नष्ट हो जाने से सान्द्रता–सघनता को प्राप्त होने वाली चन्द्र किरणों के समूह से रात्रियों में काम भी दिशाओं के विभाग के साथ–साथ विशद–उज्ज्वल अथवा अत्यंत प्रकट हो गया था।।67।। इधर–उधर बहुत भारी पुष्प और भ्रमरों को (काय के पक्ष में पुष्प रूपी वाणों को) चलाता है दक्षिण मरुत्–दक्षिण दिशा से आने वाला मलय समीर कामदेव के समान लोगों को अत्यधिक कम्पित कर रहा था।।68।। नाना प्रकार की लताओं के फूलों का लोभी भ्रमर किसी एक लता पर पैर नहीं रखता था अथवा अपना स्थान नहीं जमाता था सो ठीक ही है क्योंकि तृष्णा से कौन चंचल नहीं होता?।।69।। उस समय स्त्री पुरुषों का प्रेम एक होने पर भी नवीनता को प्राप्त हो गया था सो ठीक ही था क्योंकि समय के बल से सभी कृश पदार्थ निश्चित ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं।।70।।

इस प्रकार वसन्त ऋतु के विस्तृत होने पर किसी समय युवराज अन्तःपुर सहित क्रीडा करने के लिये देवरमण वन को गया।।71।। स्त्रियों द्वारा क्रोध और प्रसाद की लीलाओं से बाधित किये गये युवराज ने उस वन में इच्छानुसार वसन्त की लक्ष्मी का उपभोग किया।।72।।

तदनन्तर उस वन में जब सूर्य ऊपर तप रहा था तब छाया भी वृक्षों के नीचे आ गयी थी और उससे वह ऐसी जान पड़ती थी मानों पिपासा से युक्त होकर क्यारी का पानी पीने के लिये ही वृक्षों के नीचे पहुँच गयी हो।।73।। उस समय स्त्रियों के गालों के मूल भाग में उठते हुए स्वेद कणों के समूह सिन्दुवार की मंजरी को लज्जित कर रहे थे।।74।। जिस प्रकार सुन्दर अग्रभाग से युक्त सूंडों वाली हस्तिनियाँ दिग्गज को किसी आयताकार जलाशय के पास ले जाती है उसी प्रकार सुन्दर कमलों को हाथ में धारण करने वाली स्त्रियाँ उस युवराज को आयताकार जलाशय के समीप ले गयी थीं।।75।। भीतर प्रवेश करने वाली स्त्रियों के प्रतिबिम्ब के बहाने आयताकार जलाशय के जल देवता उस युवराज की मानों प्रीति पूर्वक अगवानी ही कर रहे थे।।76।।

प्रियदर्शना नाम वाली वह दीर्घिका सुन्दर लावण्य युक्त शरीरों से सहित सुन्दर तीर पर स्थित स्त्रियों के द्वारा ही मानों उस समय सार्थक नाम वाली हो गयी थी।।77।। उस समय प्रवेश करने वाली स्त्रियों के उन्नत नितम्बों से प्रेरित हुआ जल भी हर्ष से अपने भीतर न समाता हुआ ही मानों अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त हो रहा था।।78।। स्त्रियों की कान्ति में कमलों की कान्ति, सुगन्ध से सुगन्ध और मुखों से कमल स्वयं पराभव को प्राप्त हो चुके हैं ऐसा भ्रमर मानों जोर-जोर से कह रहे थे।।79।।

उन स्त्रियों के चमकते हुए रत्नमय बहुत भारी आभूषणों की कान्ति से भीतर दैदीप्यमान होने वाला वह जल भी ऐसा हो गया था मानों कामाग्नि से ही भीतर ही भीतर प्रदीप्त हो गया हो।।80।। स्त्रियों के द्वारा फाग में व्याकुल किया गया युवराज भी फाग खेलने लगा सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियों के द्वारा जीता गया महान् पुरुष भी जल क्रिया (पक्ष में जड़-अज्ञानी जन की क्रिया) को प्राप्त होता है।।81।। परस्पर के सेचन से फैले हुए जल कणों की घनघोर वर्षा से वह दीर्घिका भी चारों ओर से ऐसी हो गयी थी मानों कुहरा से ही आच्छादित हो गयी हो।।82।।

इस प्रकार अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करते हुए युवराज को आकाश में जाने वाले विद्युद्दंष्ट्र नामक शत्रु देव ने देखा।।83।। उसके बैर का कारण जान कर वह देव शीघ्र ही क्रुद्ध हो गया सो ठीक ही है क्योंकि प्राणियों का क्रोध और प्रेम कारण के बिना नहीं होते हैं।।84।। बहुत भारी क्रोध से भरे हुए उस देवने उसी क्षण पहले तो नागपाश के द्वारा युवराज की भुजाओं का बन्धन किया पश्चात् एक शिला से उस दीर्घिका को आच्छादित कर दिया।। 85।। तदनन्तर युवराज ने उस नागपाश को अपनी भुजाओं की अंगड़ाई के द्वारा ही मृणाल के समान अनादर पूर्वक तत्काल तोड़ डाला।।86।। और बायीं भुजा के द्वारा दीर्घिका के मुख से बड़ी भारी शिला को तथा स्त्री जनों से शोक को एक साथ दूर कर दिया।।87।। भावी चक्रवर्ती के धैर्य और शौर्य को देखकर वह देव भी भय से भाग गया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यवान् मनुष्य किसके द्वारा लांघा जाता है--अनादृत होता है? अर्थात् किसी के द्वारा नहीं।।88।।

वह युवराज जब तक दीर्घिका के मध्य से नहीं निकला तब तक शीघ्र ही उसका यश तीनों लोकों में व्याप्त हो गया।।89।। जिस प्रकार जगत् के संताप को हरने वाले चन्दन वृक्ष की दो शाखाएं सांपों के लिपटने के मार्ग से सुशोभित होती हैं उसी प्रकार जगत् के कष्ट को हरने वाले युवराज की दोनों भुजाएं नागपाश के लिपटने के मार्ग से सुशोभित हो रही थीं।।90।। पर्वत की शिला को उठाने के लिये जिसकी श्रेष्ठ अंगुली का नख कुछ-कुछ टेड़ा हो गया था ऐसा युवराज का वाम हाथ सार्थक होता हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा था।।91।। जिस प्रकार भयभीत हाथी का बच्चा गर्जते हुए सिंह के सामने खड़े होने के लिए समर्थ नहीं होता उसी प्रकार वह विरोधी देव भी युवराज के सामने खड़े होने के लिये समर्थ नहीं हो सका।।92।।

इस प्रकार कौतुक से युक्त नागरिक जनों के द्वारा कहे जाने वाले अपने पौरुष को दूसरे के पौरुष के समान अनादर से सुनते हुए युवराज

ने नगर में प्रवेश किया।।93।। सभा से बहुत दूर निकल कर राजा लोग जिसे देख रहे थे ऐसे युवराज ने बन्दीजनों की विरुदावली को रोक कर राजभवन में प्रवेश किया।।94।। वहाँ सिंहासन पर विराजमान, तीनों जगत् के गुरु–तीर्थंकर पद धारक पिता को नमस्कार कर उनकी प्रेमपूर्ण दृष्टि के द्वारा बार–बार देखा गया युवराज अत्यधिक प्रसन्न हो रहा था।।95।। उस समय परस्पर कहने वाले राजाओं के मुख से युवराज के पराक्रम को सुनकर प्रभु तीर्थंकर परम देव हर्ष से मुसक्याने लगे।।96।। वहाँ कुछ समय तक ठहर कर पिता से विदा को प्राप्त हुआ युवराज अपने घर जाकर इच्छानुसार चेष्टा करने लगा।।97।।

अथानन्तर क्षेमंकर महाराज यद्यपि स्वयं प्रबुद्ध थे तथापि लौकान्तिक देवों ने अपना नियोग पूरा करने के लिये उन्हें नमस्कार कर तप के लिये संबोधित किया।।98।। उस समय युवराज वज्रायुध ने मोक्षाभिलाषी पिता के द्वारा दिये हुये दैदीप्यमान मुकुट को मस्तक पर और शिक्षा वाक्य को हृदय में धारण किया।।99।। क्षेमंकर प्रभु इन्द्र समूह के द्वारा किये हुये दीक्षा कल्याणक का अनुभव कर उसी नगर के उद्यान में उत्तरमुख विराजमान हो तथा सिद्धों को नमस्कार कर दीक्षित हो गये।।100।।

तदनन्तर जो स्वभाव से ही प्रकाश को करने वाला था अथवा मन्त्री आदि प्रजा के लोग जिसका जयघोष कर रहे थे और जो लोकपाल के समान दिखाई देता था ऐसा वज्रायुध पिता के सिंहासन पर स्थित होकर अत्यधिक सुशोभित हो रहा था।।101।। नमस्कार करने वाले राजाओं के मुकुट सम्बन्धी प्रकाश से व्याप्त उसकी सभाभूमियाँ क्षण भर के लिये ऐसी जान पड़ती थीं मानों बिजली से प्रकाशित मेघ की ही लीला को धारण कर रही हों।।102।। अपनी युक्तकारिता को–मैं विचार कर योग्य कार्य करता हूँ इस बात को विस्तृत करते हुये राजा वज्रायुध ने अपने पुत्र सहस्रायुध पर युवराज पद की योजना की थी। भावार्थ–वज्रायुध ने अपने पुत्र सहस्रायुध को युवराज बना दिया।।103।।

परस्पर विरोधी प्रशम और पराक्रम को धारण करते हुये भी उसने पृथ्वी को अविरुद्ध–विरोध रहित क्रिया के फ़ल से युक्त किया था, यह आश्चर्य की बात थी।॥04॥ सहस्त्रायुध से उत्पन्न हुआ वज्रायुध का एक पोता था जो कनकशान्ति इस नाम को धारण करता था और प्रशमगुण से सहित था।॥05॥

तदनन्तर विवाद करने की इच्छा रखने वाला कोई एक विद्वान् किसी समय अपने आप की सूचना देकर उदार मनुष्यों से परिपूर्ण वज्रायुध की राजसभा में आया।॥06॥ मान के कारण भीतर कठोर होने पर भी उसने राजा को प्रणाम किया। उससे वह ऐसा जान पड़ता था मानों राजा के अतिशय शोभायमान तेज को सहन करने के लिये वह समर्थ नहीं हो रहा था।॥07॥ असाधारण आकृति को धारण करने वाले उस विद्वान् को राजा वज्रायुध ने अपने हाथ से आसन का निर्देश किया सो ठीक ही है क्योंकि विशिष्ट शरीर को धारण करने वाला मनुष्य किसके द्वारा नहीं पूजा जाता ?।॥08॥ तदनन्तर कथा के प्रसङ्ग से राजा का प्रस्ताव प्राप्त कर वह इस प्रकार की संस्कार पूर्ण वाणी को कहने के लिये उद्यत हुआ।॥09॥

हे राजन्! अपरिमित स्वरूपयुक्त भूत भावी और वर्तमान आत्मा को जानने की इच्छा रखता हुआ मैं आप जैसे सामर्थ्य शाली विद्वान के पास आया हूँ।॥10॥ आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने में संलग्न प्रमाणों का अभाव होने से आत्मा निरात्म रूप है—अभाव रूप है ऐसा कितने ही महात्माओं ने प्रतिपादन किया है।॥11॥ हे विभो! यह स्पष्ट ही है कि प्रत्यक्ष प्रमाण आत्मा को देखने के लिये समर्थ नहीं है क्योंकि परोक्ष आत्मा के देखने में उसकी अप्रत्यक्षता का प्रसङ्ग आता है।॥12॥ हे प्रभो! लिङ्ग और लिङ्गी–साधन और साध्य के अविनाभाव रूप कारण से उत्पन्न होने वाला अनुमान प्रमाण भी आत्मा को जानने के लिये समर्थ नहीं है।॥13॥ विरुद्ध आगम के सद्भाव से अन्वय की सत्यता निरस्त हो जाने के कारण बुद्धिमान् पुरुषों के लिये आगम भी आत्म

स्वभाव का ज्ञान कराने में समर्थ नहीं है। भावार्थ–एक आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करता है।

तो दूसरा आगम उसका नास्तित्व सिद्ध करता है इसीलिये आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करने में आगम प्रमाण की क्षमता नहीं है।।14।। आत्मा के लक्षण का निरूपण करने वाले समस्त ज्ञानों को उनकी आत्मग्राहकता का निराकरण करने वाले प्रमाण से ही अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिये अन्य प्रमाणों का निराकरण स्वयं हो जाता है। भावार्थ–आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करने में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाण की असमर्थता ऊपर बतायी जा चुकी है इनके अतिरिक्त जो उपमान, अर्थापत्ति तथा अभाव आदि प्रमाण हैं उनका अन्तर्भाव इन्हीं प्रमाणों में हो जाता है।।15।। जब आत्मा का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं है तब तन्मूलक परलोक भी विवेकी जनों के लिये कठिनाई से देखने योग्य दुःसाध्य हो जाता है। इसलिये मुमुक्षुजनों को सबसे पहले प्रयत्न पूर्वक आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करना चाहिये।।16।। तात्पर्य यह है कि बुद्धिमान् जनों को परलोक के लिये जलाञ्जलि देकर परलोक, तत्सम्बन्धी कामना, तथा कार्यरूप प्रयोजन से युक्त परलोक सम्बन्धी कारण में अपनी बुद्धि छोड़ देनी चाहिये। भावार्थ–आत्मा का अस्तित्व सिद्ध न होने पर परलोक का अस्तित्व स्वयं समाप्त हो जाता है और जब परलोक का अस्तित्व स्वयं समाप्त हो जाता है तब उसकी प्राप्ति का लक्ष्य रखना तथा तदनुकूल साधन सामग्री की योजना में सलंग्न रहना व्यर्थ है।।17।। इस प्रकार नैरात्म्यवाद का प्रतिपादन कर जब वह विद्वान् चुप हो गया तब सभासदों के साथ राजा भी आत्मा के अस्तित्व में संशय को प्राप्त हो गया।।18।। सम्यक् मिथ्यात्व के उदय से राजा ने यद्यपि क्षणभर के लिये 'आपका कहना सत्य है' यह कर उसके वचनों की अनुमोदना की परन्तु उसके प्रश्नों का इस प्रकार निराकरण किया।।19।।

निश्चय से आत्मा स्व पर प्रकाशक है, अपने द्वारा गृहीत शरीर प्रमाण है, उत्पाद व्यय और ध्रौव्यरूप है तथा स्वसंवेदन से निश्चित है।।20।। जिसके नेत्रयुगल खुले हुए हैं, जो वस्तुतत्व को ग्रहण करने की कला से युक्त है तथा जिसका अभिप्राय निर्मल है ऐसे मैंने इस जगत में उस आत्मा को प्रत्यक्ष देखा है—स्वयं उसका अनुभव किया है· यह भी राजा ने कहा।।21।। 'मैं आत्मद्रव्य हूँ' इस प्रकार के ज्ञान से जो आत्मा का स्वानुभव प्रत्यक्ष कर रहा है ऐसे आत्मा का कौन आत्मज्ञ विवेकी विद्वान् निराकरण करेगा ? 'मैं हूँ' इस प्रकार उत्पन्न होने वाला ज्ञान शरीर का धर्म तो हो नहीं सकता क्योंकि ज्ञान स्वसंवेदन का विषय होने से प्रत्यक्ष है यदि उसे शरीर का धर्म माना जाये तो शरीर में भी स्वसंवेदन रूप प्रत्यक्षता होनी चाहिये जो कि है नहीं।।23।। यदि शरीर में अप्रत्यक्षता है तो उसका धर्म जो ज्ञान है उसमें भी अप्रत्यक्षता होनी चाहिये अथवा शरीर का धर्म जो लम्बाई तथा स्पर्श रूपादि है वह उस ज्ञान में भी निर्बाध रूप से होना चाहिये, जो कि नहीं है।।24।। चूंकि विषाद, हर्ष, भय, सुख, दुःख आदि वृत्तियाँ सब की पृथक्–पृथक् होती हैं इसलिये हम आत्मा को पृथक्–पृथक देखते हैं। भावार्थ–जीवत्व सामान्य की अपेक्षा सब जीव एक भले ही कहे जाते हैं परन्तु सुख दुःख आदि का वेदन सब का पृथक्–पृथक् है इसलिये सब जीव पृथक्–पृथक् हैं।।25।। जो स्व और पर दोनों के प्रत्यक्ष का विषय है ऐसे जीव के शरीर को सब देखते हैं परन्तु समस्त परीक्षक जन अनुमान से दूसरे की आत्मा को भी देखते हैं। भावार्थ–अपनी आत्मा का सब को स्वानुभव प्रत्यक्ष हो रहा है तथा शरीर निज और पर को प्रत्यक्ष दिख रहा है। साथ ही पर के शरीर में आत्मा है इसका ज्ञान अनुमान प्रमाण से होता है।।26।। अपने आप में तथा शरीर से उत्पन्न होने वाले जो वचन और कार्य के व्यापार हैं वे आत्मा के बिना नहीं हो सकते। इसी प्रकार जो श्वासोच्छ्वास आदि गुण दूसरे के शरीर में दिखाई देते हैं वे भी आत्मा के बिना नहीं हो सकते अतः वे दूसरे की आत्मा का अस्तित्व सिद्ध

करने वाले हैं। बुद्धिमान् मनुष्यों का जो यह विवेक अथवा स्वसंवेदन पूर्वक प्रत्यक्ष है वह अनुमान माना गया है।।127–128।। कभी कदाचित् इसी स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से दूसरा अनुमान भी हो सकता है परन्तु वह शरीर धारी प्राणियों का प्रत्यक्षाभास प्रमाण कहा जाता है। तो फिर इस प्रत्यक्ष को भी प्रमाणता कैसे आवेगी ? ऐसा यदि पूछा जाय तो उसका समाधान यह है कि वह प्रत्यक्ष, आत्मा तथा अन्य पदार्थ इनके अस्तित्व का ज्ञान होने पर ही उत्पन्न हुआ है अतः प्रमाण है।।129–130।। (?)

यदि गाली देने वाला व्यक्ति नम्र हो जाता है तो जिसे गाली दी गयी थी उसका क्रोध नष्ट हो जाता है और प्रसन्नता भी उत्पन्न हो जाती है, आत्मा दोनों अवस्थाओं में रहता है इससे प्रतीत होता है कि जीवतत्व उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीन रूप है।।131।।

जो निर्वाध रूप से उत्पादादि तीन रूप है ऐसा यह आत्मा सभी परीक्षकों के द्वारा प्रारम्भ से लेकर मरण पर्यन्त स्पष्ट अनुभव होता है।।132।। उस आत्मा का उत्पादादि तीन की अपेक्षा जो भेद है वह अन्यथा बन नहीं सकता इसलिये भूत भविष्यत् और वर्तमान पर्यायों का अनन्तपना सिद्ध होता है।।133।। यह आत्मा ग्रहण की हुई मनुष्य पर्याय को छोड़कर अन्य पर्याय को प्राप्त होता है इसलिये परलोक भी सिद्ध होता है और उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य–इन तीन की भी सिद्धि होती है।।134।। समान अध्ययन और समान सेवा करने वाले मनुष्यों के जो अपने सुख दुःख आदि की विचित्रता है वह उनके अदृष्ट–कर्मोदय का अनुमान कराती है।।135।। चूंकि कार्यों में विचित्रता देखी जाती है इसलिये उनके कारणभूत अदृष्ट की विचित्रता भी सिद्ध होती है क्योंकि समान कारण से विभिन्न कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती।।136।। अद्वैत से यदि संपूर्ण विश्व की उत्पत्ति होती तो समस्त जगत् हठात् युगपत होना चाहिये क्योंकि अद्वैत के अक्रमरूप होने से क्रमवर्ती जगत की उत्पत्ति संभव नहीं है। फिर अद्वैत से जगत् की उत्पत्ति मानने पर प्रमाण के अभाव का प्रसङ्ग आवेगा। क्योंकि प्रमाण के मानने पर उसके विषयभूत

प्रमेय को भी मानना पड़ेगा और उस स्थिति में प्रमाण तथा प्रमेय का द्वैत हो जायेगा।॥37।। आत्मतत्त्व न माना जाये तो प्रमाण का अभाव हो जायेगा इसलिये आत्मतत्त्व को मानना ही श्रेयस्कर है। आत्मतत्त्व मानकर भी उसे परस्पर–दूसरी आत्मा से भिन्न न माना जाये तो उसका नियम भी कैसे सिद्ध हो सकता है ?।॥38।। दूसरी बात यह है कि आत्मा का नियम न मानने पर विपर्यय के कारण प्रमाण असत्य हो जायेगा और प्रमाण की असत्यता मानना उचित है नहीं क्योंकि वैसा करने पर प्रमाण में असत्यता आ जायेगी। वह आत्मा शरीर प्रमाण है क्योंकि उस शरीर में ही आत्मा का अनुभव होता है और चूंकि आत्मा अन्य शरीर में चली जाती है इसलिये उसका शरीर से पृथक्पना भी युक्ति पूर्ण है।॥40।।

इस प्रकार अनेक पर्यायों को प्राप्त करने वाला यह आत्मा निजात्मा और परात्मा को प्रकाशित करने वाला है। इन सबको प्रकाशित करना इसका स्वभाव है। जब यह स्वभाव प्रकट होता है तब एक ही साथ समस्त पदार्थों को प्रकाशित कर सकता है। समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने में अन्य कोई कारण नहीं है और न कोई अन्य आत्मा की मान्यता ही युक्ति युक्त है। जिस प्रकार अग्नि जलाने के योग्य पदार्थ को जलाती है तो यह उसका स्वभाव ही है। चन्द्रकान्त आदि मणियों का प्रतिबन्ध जिस प्रकार अग्नि के दाह स्वभाव के प्रकट होने में बाधक कारण है उसी प्रकार आत्मा के ज्ञान स्वभाव के प्रकट होने में ज्ञानावरणादि कर्म का उदय बाधक कारण है। बाधक कारण के हटने पर आत्मा अपने ज्ञान स्वभाव से सबको प्रकाशित करने लगता है।॥41–142।।

अनुभव में आने वाले ज्ञान से आत्मा का कथंचित् अनित्यपना भी सिद्ध होता है क्योंकि प्रतिक्षण अन्य–अन्य घट पटादि पदार्थों का ज्ञान होता रहता है। इसी प्रकार ज्ञान की सप्रतिबन्धता–बाधक कारणों से सहितपना और सनिबन्धनता–कारणों से सहितपना भी सिद्ध होता है भावार्थ–ज्ञान के विषयभूत घट पटादि पदार्थों की अनित्यता के कारण

ज्ञान में भी कथंचित् अनित्यता है और क्षायोपशमिक ज्ञान चूंकि दीवाल आदि प्रतिबंधक कारणों का अभाव होने पर तथा प्रकाश आदि अनुकूल कारणों के होने पर प्रकट होता है इसलिये ज्ञान में कथंचित् सप्रति–बन्धता और संनिबन्धनता भी विद्यमान है। हाँ केवलज्ञान इन दोनों से रहित होता है।।43।।

अनात्मा और अनात्मीय पदार्थों में जो आत्मा आत्मीय का ज्ञान होता है तन्मूलक ही समस्त दोष होते हैं और समस्त दोष ही कर्मबन्ध के कारण होते हैं। भावार्थ–ज्ञाता द्रष्टा स्वभाव वाला आत्मा है और ज्ञान दर्शन सुख वीर्य आदि आत्मीय हैं क्योंकि इसके साथ ही आत्मा का व्याप्य व्यापक या त्रैकालिक सम्बन्ध है इसके विपरीत नोकर्म–शरीरादि को आत्मा तथा रागादि विकारी भावों अथवा स्त्री पुत्रादि को आत्मीय मानना अज्ञान है। संसार में कर्मबन्ध के कारणभूत जितने दोष हैं उन सबका मूल कारण यह अज्ञान भाव ही है।।44।। कर्मोदय से होने वाले दुःख को संसार मानते हैं और संसार के कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के विपरीत सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र जिसका स्वरूप है वह रत्नत्रय की भावना है।।45।। क्रम से पूर्णता को प्राप्त हुए आत्मा और आत्मीय के ज्ञान से जब संसार के समस्त कारणों–मिथ्यादर्शनादि का अभाव हो जाता है, तत् तत् कारणों से बंधने वाले कर्मों पर प्रतिबन्ध लग जाता है अर्थात् उनका संवर हो जाता है पूर्व बद्ध कर्मों की निर्जरा हो जाती है तब बन्ध रहित अवस्था होने से सहज शुद्ध अनन्त चतुष्टय रूप त्रैकालिक सर्वश्रेष्ठ स्वभाव में शुद्धात्मा की जो सम्यक् प्रकार से स्थिति होती है ज्ञानीजन उस निर्बाध स्थिति को मोक्ष कहते हैं इस प्रकार तेरे लिये जीव तत्त्व के सर्वोत्कृष्ट ज्ञानादि चतुष्टय का स्पष्ट कथन किया है।।46–149।। इस प्रकार उस राजा ने जीव के अस्तित्व विषयक संशय का निराकरण कर दिया और प्रतिवादी ने भी उसके वचनों को 'तथेति' ऐसा ही है यह कह कर स्वीकृत कर लिया।।50।। 'आपके समान दूसरा सम्यग्दृष्टि नहीं

है' ऐसा जो ईशानेन्द्र ने कहा था वह वैसा ही है' यह कह कर देव ने राजा की पूजा की पश्चात् वह स्वर्ग चला गया।।151।।

तदनन्तर उस देव के चले जाने पर जिन्हें कौतूहल उत्पन्न हुआ था ऐसे सभासदों ने कहा कि यह कौन है ? यह सब क्या है ? इसके उत्तर में राजा ने कहा कि यह महाबल नाम का विद्याधर उस महायुद्ध में जिसमें कि दमितारि का वध हुआ था क्रोधवश मेरे द्वारा पहले मारा गया था।।152–153।। वह संसार में भ्रमण कर देव हुआ। देवसभा में आज ईशानेन्द्र ने सम्यग्दृष्टियों की कथा चलने पर मेरा नाम लिया। तदनन्तर यह देव अन्तरङ्ग में क्रुद्ध हो मुझे छलने के लिये प्रवादी के कपट से यहाँ आया था सो ठीक ही है क्योंकि पहले का वैर बड़ी कठिनाई से छूटता है।।155।। इस प्रकार अनुगामी अवधिज्ञान रूपी नेत्र से युक्त राजा उन सभासदों के लिये देव के आने का कारण कह कर अन्य कुछ कारण न होने से चुप हो गया।।।156।।

इस प्रकार जो निरन्तर धर्म कथा में उद्यत होता हुआ भी स्वराष्ट्र तथा परराष्ट्र की चिन्ता में निपुण मन्त्रियों के द्वारा अधिकृत राज्य की स्थिति को क्रम से बढ़ा रहा था तथा स्त्रियाँ जिसे अन्तर्गत स्नेह रूपी रस से आर्द्र दृष्टि के द्वारा देखती थीं ऐसा वह राजा धर्म तथा अर्थ से अविरुद्ध काम का भी उपभोग करता था।।157।। समस्त शत्रु राजा भी जो पहले शक्ति शाली थे, आगे प्रकट होने वाले चक्र के भय से ही मानों उसके चरणों में स्वयं आदर पूर्वक नम्रीभूत हो गये थे यह ठीक ही है क्योंकि लोकों को आनन्दित करने वाले उसके गुण समूह से स्वयं आकृष्ट हुई पूर्वोपार्जित पुण्य रुपी अनिर्वचनीय संपदा किस आश्चर्य को विस्तृत नहीं करती है ?।।158।।

इस प्रकार असग महाकवि के द्वारा विरचित शान्तिपुराण में वज्रायुध की उत्पत्ति तथा वज्रायुध ने प्रतिवादी को जीता इसका वर्णन करने वाला नवम सर्ग समाप्त हुआ।।9।।